श्रीसख्यसिन्धुचन्द्रोदयः



"अंशांश्चैते यस्य नित्यं सखायः"
—इति श्रुतिः, साम-रहस्ये।
"इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः"
—इति भगवद्गीतायां।

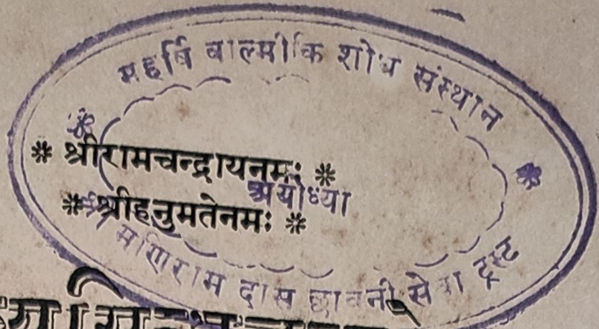


"भ्रमन्तं विरमन्तं ये रागारण्ये तमोमये।
अन्वेषन्ते वृथा दिव्यं रसामृत-सरोवरम्॥
स्वप्रकाश-प्रदानेन सत्पथस्य प्रदर्शकः।
सख्यसिन्धूदितः पूर्णचन्द्रोऽयं सुप्रकाशितः॥"



रचयिता,

श्रीस्वामि पं० श्रीअवधशरणः।



* श्रीरामचन्द्रायनमः *
* श्रीहनुमतेनमः *

श्रीसख्यसिन्धुचन्द्रोदयः

सख्यरसमानस-राजहंसेन, श्रीमन्निध्याचार्य्य-श्रीराम-सखेन्द्रवंशावतंसेन, परसाकेतगतेन श्रीमत्स्वामि पण्डितप्रवरेण **श्रीअवधशरणेन-विरचितः**

ज्योत्स्ना

(टीका)

निखिलनिगमागमपारावारेण, सकलसाधुगुणागारेण, परमब्रह्मनिष्ठेन, विपुलगौरवगरिष्ठेन, श्रीरामानन्दीय-श्रीसम्प्रदायाचार्यवरेण, श्रीअयोध्या-जानकीघाट-निवासिना अष्टोत्तरशतश्रीमत्स्वामि

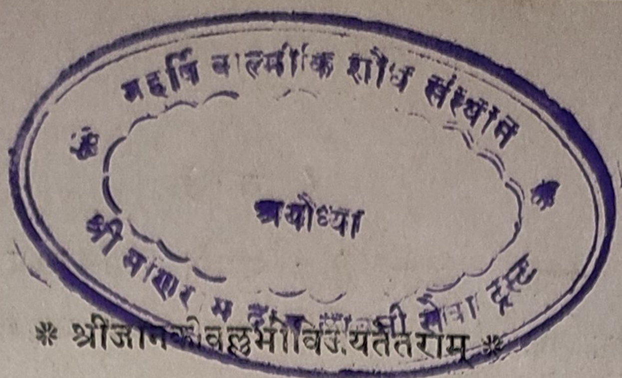
पं० श्रीरामवल्लभाशरणेन कृता।

प्रकाशकः—
श्रीमद्रामसखेन्द्रवंशोद्भवः
श्रीस्वामि महान्त श्रीकामदाशरणः
(श्रीरामसखाजीकी बगिया, श्रीअयोध्याजी)।

सम्पादकः—
पं० श्रीरामानुजशरणः
श्रीअयोध्या

सं० १९८५ वै०
श्रीगिरिजादयालुद्वारा श्रीसीताराम मुद्रणालय
श्रीअयोध्यामें मुद्रित।

प्रथमावृत्ति ८०० } { मूल्य ॥)



* श्रीजानकीवल्लभो विजयतेतराम् *

भूमिका

रस एक दिव्य अलौकिक पदार्थ है। वह सच्चिद्-विशिष्ट आनन्दात्मक है। ऐसे वाक्यके आयोजनका अभिप्राय यह कि ब्रह्मकी वह अवस्था, जिसमें सच्चिद्का आनन्दमें पर्य्यवसान होताहै, (वही) रस है । साहित्यकारोंने भी उसका प्रायः ऐसाही लक्षण माना है, यथा—

"सत्त्वोद्रेकाखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः ।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः ॥ १ ॥
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः । १ "
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः ॥ २ ॥

एतल्लक्षणलक्षितं ब्रह्मतत्त्वही है। अतएव श्रुति भगवती उसे "रसो वै सः" निर्देश करती है। "रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।" उसी रसको पाकर जीव आनन्दित होते हैं।" तथाच "आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन।" ब्रह्मानन्दविद् कभी भयको नहीं प्राप्त होते । ब्रह्मानन्दात्मक रसका यह शुद्धरूप गुणातीत अतएव दिव्य है। आत्माके योगसे शुद्ध सात्त्विक मनकोही इसका अनुभव होता है। भावोत्कर्षसे उत्पन्न हुआ लोकोत्तर चमत्कार रसका साधारण लक्षण है । आत्मोन्मुख मनको ब्रह्मानन्दानुभवसे जो भावोत्कर्ष होता है वही भक्तिरस है। आत्मासे जो उस अवस्थामें मनकी एकता अथवा मैत्री स्फुरित होती है वही सख्यरस है।

वस्तुतः पूर्वनिर्देशानुसार "स्वप्रकाशानन्दचिन्मयः" रस सात्त्विक अन्तष्करणोंमेंही उत्पन्न होता है ("सत्त्वोद्रेकः")। जब "रजस्तमोभ्यामस्पृष्टः" मानस होता है तब सत्त्वके सूक्ष्म आवरणमें परमात्माका

दिव्य प्रकाश छनता है। उसके रस-स्वरूप होनेसे उसके प्रकाशकी किरणें, चन्द्रमरीचियोंमें सुधाके सदृश, रसमें निमज्जित होती हैं। अतएव सात्त्विक अन्तष्करणोंमें रसामृतका सञ्चार होता है। सामान्यतः वह श्रद्धा-भक्तिके रूपमें परिणत होता है। उसमें विश्व-मैत्री एवम् दयाका भाव उदय होता है। यदि वह पुरुष भगवत् की ओर प्रवृत्त हुआ और उसके हृदयमें उनके प्रति भक्तिका सञ्चार हुआ तो उसके अन्तष्करणके संस्कारानुसार सख्य, शृङ्गार, वात्सल्य, दास्य और शान्त, इनमेंसे एकका उद्भाव हो जायगा। शान्तसे पूर्वोक्त रसचतुष्टयका उतनाही अन्तर है जितना कि शुभ्र प्रकाश एवम् अनुरञ्जित प्रकाशमें। इनमेंसे कोई भी न्यूनाधिक नहीं। वस्तुतः रसका उत्कर्ष भक्ति पर एवम् भक्तिका अन्तष्करणके वैशद्यपर अवलम्बित है। ब्रह्ममें एवम् उसके प्रत्येक अङ्गमें समता तथा सम्पूर्णताका धर्म्म एकरस व्यापक है। अतः रसरूपभी उसका प्रत्येक परिणाममें वैसाही समशील तथा समुदार होगा—"सर्वे सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिताः।" सविशेष भगवदुपासकोंमें प्रायः सख्य-वात्सल्य-शृङ्गार और दास्य, ये चार रसही गृहीत देखे जाते हैं। इनमें भी सामान्यतः दास्य रसही अधिक प्रचलित है। अन्तष्करणमें जो परमात्माके अस्तित्वका निश्चय अथवा विश्वास है वह शब्द-प्रमाण अथवा भगवद्गुण-श्रवणसे सत्त्वका आश्रय पाकर प्रस्फुटित होजाता है और भगवान्में प्रेम उत्पन्न होता है। वह (प्रेम) साधनावस्थामेंभी सख्यादि रसोंमें परिणत हो सकता है और सिद्धावस्थामेंभी। साधनावस्थामें प्रायः वे भावरूपमें रहते हैं और कभी-कभी प्रेमोत्कर्षसे रसरूपमेंभी परिणत होते हैं (क्योंकि भावही विभाव, अनुभाव और सञ्चारियोंसे चमत्कृत एवम् उत्कृष्ट होकर रस कहलाते हैं)। परञ्च जब अन्तष्करणमें प्रेमके निरतिशय उत्कर्षसे अहङ्कारकी वृत्तिका उसमें लय होता है तब परमात्म-साक्षात्कारके समयही वस्तुतस्तु तत्समानधर्म्मी रसका सञ्चार होता है। कारण यह कि आलम्बन-दर्शनही रसके प्रादुर्भावका मुख्य हेतु है। राजर्षि मनु और उनकी सहधर्म्मिणी शत-

रूपाजीके तथा कश्यप और अदितिके हृदयमें भगवद्दर्शनके समय वात्सल्य रसका सञ्चार हुआ और उन्होंने भगवान्से अपने पुत्र होनेकाही वर मांगा। जब श्रीरामचन्द्रजी मिथिलामें, स्वयम्वर-रङ्गशालामें पधारे तब उनके दर्शनोंसे भिन्न भिन्न पात्रोंमें भिन्न-भिन्न रसोंका आविर्भाव हुआ। समवयस्क कुमारोंके हृदयमें सख्यरसका, वयोवृद्ध गुरुजनमें वात्सल्यका, योगियोंमें शान्ताका, विष्णुभक्तोंमें दास्यका और युवतिजनमें शृङ्गारका उदयहुआ और उन्होंने श्रीरघुनायकको शृङ्गार-रूप देखा, यथा—"नारिविलोकहिं हरषि हिय निज-निज रुचि अनु-रूप। जनु सोहत शृङ्गारधर मूरति परम अनूप॥" "यहि विध रहा जाहि जस भाऊ। सो तस देखेउ कोशलराऊ॥" श्रीकृष्णचन्द्रजीके दर्शनोंसे भी मल्लरङ्गशालामें ऐसाही सङ्घटन हुआ था, यथा—

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्त्तिमान्।
गोपानां स्वजनो सतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराड् विदुषां तत्त्वं परं योगिनाम्
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो, रङ्गङ्गतः साग्रजः॥

एकही प्रेमतत्त्व अथवा रति गुरुजनमें होनेसे भक्ति कहलाती है और समवयस्कोंमें मैत्री। कनिष्ठों और लघुजनोंमें होनेसे उसे वात्सल्य अथवा दया कहते हैं। इसी प्रकार विभिन्न आलम्बनों और अन्तष्करणोंके निमित्तभेदसे एकही प्रेमतत्त्व पञ्चरसोंमें परिणत हुआ है। क्योंकि प्रेमके साथ रसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक-न-एक रसके आश्रयसे वह रहेगा। ये पञ्चरस लौकिक सम्बन्धोंमें भी व्यापक हैं, जैसे मित्र-मित्रमें सख्य, दम्पतिमें शृङ्गार, पिता-पुत्रमें वात्सल्य, स्वामि-सेवकमें दास्य और साधारणतः विरक्तोंमें शान्तरसकी स्थिति है। येही पञ्चरस ईश्वरीय प्रेममेंभी संलग्न हैं। प्रेमके, इन पञ्चविध रसोंके आधारसे, अवस्थित होनेके कारण प्राणी इनका पूर्णरूपसे अभ्यस्त है। अतः भगवत्में इनमेंसे किसीभी रसके आश्रयसे, जिसका संस्कार उसके अन्तष्करणमें प्रबल होगा, प्रेम होनेमें सुगमता होगी।

इस "सख्यसिन्धुचन्द्रोदय" में सख्यरसका प्रतिपादन है

वेदों और उनके उपनिषद्भागमें सख्यरसका स्पष्ट निर्देश मिलता है, यथा—"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वादवत्त्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति ॥" इत्यादि। जीव और ईश्वर परस्पर अंशांशी होनेसे समानधर्म्मी अतएव सहज सखा हैं, इस वैदिक सिद्धान्तका प्रस्तुत ग्रंथमें अच्छा निदर्शन हुआ है। पण्डितप्रवर ग्रंथकार महानुभावने श्रौतस्मार्त्त प्रमाणों और युक्तियों से अपने अधिकृत विषयका सफलतापूर्वक प्रतिपादन किया है। उन्हों ने सख्यरसको सब रसोंका मूलकारण माना है और सब भावों अथवा सम्बन्धोंमें उसकी व्यापकता सिद्ध की है। रसके मूलोद्गमके अनुसन्धानमें प्रायः मतभेद देखा जाता है, जैसे महाकवि भवभूतिने करुणरसकोही प्रधान किम्वा रसराज माना है—

एकोरसः करुण एव निमित्तभेदा—
द्भिन्नःपृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्त्तान्।
आवर्त्त बुद्बुद तरङ्गमयाविकारा—
नम्भो यथा सलिलमेवतु तत्समग्रम् ॥

विद्वानोंमें प्रायः ऐसा मतभेद हुआही करता है। शास्त्रकारोंमें कितने ही मतभेद हुए हैं। एक विद्वान् जब अपने पक्षका समर्थन करने लगता है तब उससे उसके सिद्धान्तके उत्कर्षके साथ पक्षान्तरका कुछ अपकर्ष भी होता ही है।

ग्रन्थकार महानुभावने विशेषतः शृङ्गारसे प्रतियोगिताकी है। सो, उसके प्राकृत (लौकिक) रूपको अधिकृत करके साहित्यके शास्त्रीय क्षेत्रमें—शृङ्गारमें सख्यकी व्यापकता दिखाई है। भक्तिपक्षमें उसका नियताधिकारत्व स्वीकार किया है। उनका यह श्लाघनीय सम्मत है कि भगवान् श्रीरामभद्र एकपत्नीव्रत हैं और उनके सम्बन्धमें शृङ्गार (नायिकानिष्ठ) केवल श्रीजनकनन्दिनीहीमें विशिष्ट है। सखीत्व व्यापक है। सो सख्यहीका अन्तर्भेद है। ग्रन्थकारका यह सदाशय उद्बोधित होता है कि शृङ्गाररस सर्व्वसाधारण पुरुषोंके

लिये उपयोगी और अनुकूल नहीं। रजस्तमसाच्छन्न मलीमस मानसों में उसके रूपके विकृत होनेकी सम्भावना है। विशेष-विशेष पात्रों को ही उसका अधिकार होसकता है। इस प्रकार उन्होंने विद्वत्तापूर्ण सद्भावसे शृङ्गारभावको संयत किया है। वस्तुतस्तु शुद्ध निरहङ्कार मानसके सत्य अतएव निश्छल प्रेमका ही भगवान् ग्रहण करते हैं, भाव कोई भी हो। साध्य तो इष्ट है, भावादि उसके साधनमात्र हैं। अतः भावुकोंको इसका ध्यान रखना चाहिए कि साधनही साध्य न होने पाए।

यह ग्रन्थ "सख्यसिन्धुचन्द्रोदयः" श्रीमत्स्वामि पण्डितप्रवर श्रीमदवधशरणजी महाराजका निर्म्माण किया हुआ है। आप सख्य-रसके भावुक महात्मा थे, अर्थात् भावतः रघुवंशी राजकुमार एवम् भगवान् श्रीरामभद्रके सखा थे, जैसा कि "चन्द्रोदय" के आलोका-न्तःस्थ सङ्कल्पोंमें नियोजित है। जैसे आप भावुक थे, वैसेही विरक्त एवम् ब्रह्मनिष्ठ थे और वैसे ही प्रबल विद्वान्। उनकी साकेतयात्रा हुए ४० वर्ष होगए। तबसे यह ग्रन्थ अप्रकाशित पड़ा था। ग्रन्थकार की परम्पराके पण्डित रामानुजशरणजीने उसके प्रकाशनका उत्साह प्रकट किया और मुझसे उसकी टीका करनेकी प्रार्थना की। मैं भग-वत्सम्बन्धसे पञ्चरसमात्रका पोषक हूं। जिस रसमें अथवा जिस इष्टदेवमें जिसकी विशेष निष्ठा हो उसीमें उसे पुष्ट एवम् प्रोत्साहित करना, यह साधुरीति है। अतः उनकी समुचित प्रार्थना स्वीकार कर मैंने उक्त ग्रन्थका अनुवाद उन्हें लिखा दिया। इसका सम्पादन उन्हीं ने किया-कराया है। हर्षकी बात है कि वह सुसम्पादित होकर प्रका-शित होरहा है। सख्यरसके भावुकोंकी तो यह वस्तु ही है परञ्च तत्त्व-विचारसे ईश्वरनिष्ठ विद्वान्मात्रके लिएभी यह उपयोगी हो सकताहै। आशा है विद्वत्समाजमें यह समादरणीय हो।

जानकीघाट, अयोध्या,
का० शु० ८, भौ०
सं० १९८५ वै०

पं० रामवल्लभाशरण

श्रीरामचन्द्रायनमः।

सम्पादकीय वक्तव्य

चन्द्रोदयका प्रतिपाद्य विषय।

जीवलोकके परम सखा राघवेन्द्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके निरतिशय अनुकम्पानिलसे विविधविघ्नरूप मेघावरणका निवारण कर "सख्यसिन्धु-चन्द्रोदयः" अखण्डाद्वितीय परमार्थाकाशमण्डलमें प्रकाशित होकर अपने मञ्जुलालोकसे दिग्दिगन्तको आलोकित करता हुआ सख्यरस-रसिक चकोरोंको परमानन्द प्रदान करनेको प्रस्तुत होगया। सख्यरस वह रस है जो अनेक-भावरूप प्रसूनपुञ्जमें व्याप्त है, यह अनन्तश्यामसुन्दर-स्वातीमेघका वह शारदीय बिन्दु है जो कहीं कपूर, कहीं मुक्ता और कहीं गोरोचन आदि विभिन्न नाम-रूपोंसे शृङ्गारादि नाना रसोंके मिष अपनी समुज्ज्वल-कीर्त्ति-कौमुदीका प्रसार कररहा है। विना सख्य अथवा मैत्रीके प्रेमकी स्थितिही नहीं। यह वह अपूर्व आकर्षण है जो दो भिन्न-भिन्न आत्माओंको एक कर-देता है, यह वह दिव्यामोघ तन्त्र है जो स्त्री-पुरुष-सदृश दो विजातीय योनियोंका भेद मिटाकर प्रेमके अमरलोकमें उनके सम्बन्धको स्थायित्व प्रदान करता है, यह वह अलौकिक शक्ति है जिसके प्रभावसे समस्त दिव्यादिव्य लोक अवस्थित हैं, सम्पूर्ण सृष्टि व्यवस्थित है, यह वह दिव्यामृत है जो गृहजीवन, जानपदजीवन, राष्ट्रजीवन एवम् विश्वजीवनको जीवनप्रदान करताहै। यदि इसकी शक्ति तिरोहित होजाय तो संसारमें द्वेष, कलह, छल, अविश्वास, हिंसा एवम् अशान्तिका अखण्ड साम्राज्य स्थापित होजाय, लोकानुबन्ध छिन्न-भिन्न होजाय, अपिच सृष्टिही नष्ट होजाय। सख्यरस वह ईश्वरीय तत्त्व है जिसका ऐक्य बन्धु तथा सङ्ग सहचर है। इसी हेतु वेद भगवान् उसे ब्रह्मरूपेण

निरूपण करते हैं, यथा—"रसो वै सः, ब्रह्मैव रसः।" अतएव यही वह अलौकिक चमत्कृत पदार्थ है जो संसारमें प्रेम-नामसे प्रसिद्ध है। अस्तु, वस्तुतस्तु यही मूलरस, आदिरस अथवा रसराज है। जो किसीने शृङ्गार, किसीने करुणको, जैसे महाकवि भवभूतिने, यथा, —"एको रसः करुण एव" इत्यादि, तथा किसीने अद्भुतको प्रधान वा रसराज माना है, यथा—"रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते। तच्चमत्कारसारत्वे सर्वत्राप्यद्भुतो रसः। तस्मादद्भुतमेवाह कृती नारायणो रसम्"॥ सो सख्यातिरिक्त नवरसोंमें, अन्यथा सख्यादि सहित द्वादश रसोंकी गणनामें तो सख्यही सब रसोंका मूलभूत होनेसे आदि अथवा रसराज है। यही वेदोदित सिद्धान्त है। जीव ईश्वरका समलिङ्ग, समाकार, अंशत्वेन सहज सखा है। प्रत्येक जीवके अन्तरात्मामें इस दिव्य रसकी धवल धारा बह रही है। यह वह ईश्वरीय सम्बन्ध है जो निर्विकल्प अर्थात् विना कल्पना अथवा भावनाके स्वतः सिद्ध है, यह वह नैसर्गिक भाव है जिसमें कृत्रिमताकी आवश्यकता नहीं। उसी आत्मस्वरूप-परिज्ञानको वैदिक परिभाषामें सख्यरस कहते हैं। उसके दैवत सच्चिदानन्दकन्द, परमपुरुष, परमात्मा श्रीरामही हैं।

हे सख्यरस-पूर्णचन्द्र राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्र, इस मनुष्यलोकको तुम्हारी अतिशय आवश्यकता है, तुम्हारे विना वह मृतप्राय हो रहा है, उसमें अपनी कृपासुधाका सञ्चारकर जीवन प्रदान करो, अनन्त-जलनिधिमें लीलायमाना इस मेदिनी-कुमुदिनीको अपने सुधास्निग्ध कर-निकरके मृदु स्पर्शसे उत्फुल्ल और आमोदित करो, इस प्राची दिशामें फिर एकवार उदित होकर भारत-महीको प्रमुदित करो।

चन्द्रोदयकारका संक्षिप्त परिचय

इस अवसरपर चन्द्रोदयकार अष्टोत्तरशतश्रीमत्स्वामि श्रद्धेय पण्डितवर श्रीमदवधशरणजी महाराज अवधवासीका संक्षिप्त परिचय देदेना आवश्यक है। आप सरयूपारीण शाण्डिल्यगोत्रीय चौरिहा

ब्राह्मण थे। आपके पूज्य पिताका शुभ नाम श्रीमत्पण्डित रामदयालुजी था। रीवा-राज्यान्तर्गत कृपालुपुर ग्राम (कछिया टोला) आपकी जन्मभूमि है। श्री१०८ युक्त स्वामी श्रीलक्ष्मणदासजी महाराज तद्रूप-नाम श्रीलक्ष्मणाचार्य्यजीके आप कृपापात्र शिष्य थे। जैसे श्रीमल्लक्ष्मणाचार्य्य स्वामी महाराज अपने समयके प्रसिद्ध विद्वान् एवम् ब्रह्मनिष्ठ महात्मा थे तैसे आप उनके योग्य शिष्य हुए। व्याकरण-साहित्य-न्याय-मीमांसा-वेदान्तादि अनेक शास्त्रोंके आप पारङ्गत-विद्वान् थे। कई वैदिक संहिताए आपको कण्ठस्थ थीं। वेदार्थके तो आप अपूर्वही विशेषज्ञ थे। दुर्धर्ष नैयायिक पण्डित दिवाकर भट्टको शास्त्रार्थमें परास्त करनेसे आपकी रीवामें बड़ी ख्याति होगई और सब लोग विशेष श्रद्धा करने लगे। जहां-कहीं पण्डित-सभा होती आप सादर आमन्त्रित किए जाते और श्रेष्ठ आसनपर पधराए जाते। परञ्च कुछही दिनोंके बाद माधवगढ़के परम रामभक्त पं० रामाधीनजी पौराणिकके सत्सङ्गसे आपपर गाढ़ा राम-रङ्ग चढ़ा और तीव्र वैराग्य उदय हुआ। लोकमान्यताको लातमार आप श्रीगुरुदेवसे आज्ञा लेकर श्रीअवध चलेआए। श्रीसरयू-पुलिनमें इष्ट-ध्यानमें निमग्न आप पड़े रहते। श्रीअवधके परमोत्कृष्ट विद्वान् श्री १०८ युक्त पं० उमापति त्रिपाठीजी महाराजसे उनका घनिष्ठ प्रेम था। श्रीत्रिपाठीजी वात्सल्यरसके उपासक थे, श्रीरामचन्द्रजीका अपनेको गुरु मानते थे। और ग्रन्थ-कार महाराजका रघुवंशी राजकुमारका भाव था, वे श्रीरामभद्रके सखा थे। अतः श्रीत्रिपाठीजी महाराज ग्रंथकारपर बड़ा वात्सल्य रखते थे। जब वे उनके (श्रीत्रिपाठीजीके) पास जाते थे तब वे श्री-राघवेन्द्रके भावसे उनका मस्तकाघ्राण करते और अपनी गोदमें बैठाते, फिर श्रेष्ठ आसन प्रदान करते। उनका परस्पर ऐसा अलौकिक रहस्य था कि यदि कहींसे कोई जटिल (विवादग्रस्त) प्रश्न आता तो जब-तब वे सन्तोषजनक निर्णयके लिए हमारे चरितनायक(चन्द्रो-दयकारके पास भेज देते और वे उसपर वही उत्तर लिखकर लौटाते

जो उनके मनोगत होता। उस समय श्रीतिवारीजी समुपस्थित जन से कहते कि—"देखो,हमने कहा न कि यही उत्तर"लालसाहब"लिखेंगे। वे श्रीचन्द्रोदयकार स्वामिको प्यारसे "लालसाहब" कहा करते।

हमारे चरितनायक स्वामिका यह नियम था कि वे नित्य अपराह्णमें इतिहास-पुराणादिकी कथा कहते और शतशः सन्त एवम् अन्यान्य प्रेमी श्रोता सुनकर कृतार्थ होते। जिस दिन श्रीमद्रामायणमें शबरीका प्रसङ्ग आता उस दिन समस्त श्रोताओंको फल-मूलका भगवत्प्रसाद वितरण कराते। जिस समय आपकी माधुर्य-प्रसाद-गुणान्विता पुण्या वाणीकी मन्दाकिनी प्रवाहित होती उस समय श्रोतृवृन्द के अन्तष्करण उसमें आप्लावित होकर तन्मय होजाते, सबकी दृष्टि और चित्तमें एकागृता और शान्ति छाजाती। आपकी व्याख्याशैली और विषय-निरूपण ऐसा सुबोध एवम् मनोहर होता कि तत्काल हृदयङ्गमित होजाता। बड़े-बड़े विद्वान् आपकी प्रकर्ष विद्वत्ता एवम् वाचाशक्तिकी प्रशंसा करते। आप वक्तृत्वके विषयमें कहते—"वक्तुरेवहि तज्जाड्यं यत्र श्रोता न बुध्यते।" आप अपने अर्चा-विगृह श्रीलालजीकी प्रतिदिन सायङ्कालमें वायु-सेवनके लिए यात्रा कराते। आगे-आगे पीनसमें चमर-छत्रादिसे सेवित भगवान् पीछे श्रीसीता-रामनामोच्चारण करते हुए सन्तसमूहके मध्य आप चलते। अखण्ड ब्रह्मचर्य और तपके तेजसे आपका सुन्दर-सुगौर मुखमण्डल दमकता रहता था। सरल, एकरस प्रसन्न स्वभाव, मनोहर, हितकर,मिताक्षर, अर्थविस्तर, मधुर-मृदु भाषण, आपका परमोदार-निस्पृह चित्त—इस प्रकार बाह्याभ्यन्तर आपके स्वरूप-दर्शनसे अनायास चित्तमें यही भावना हो उठती थी कि कोई दिव्यलोकसे उतरा हुआ उत्कृष्ट तेज पृथ्वी को कृतार्थ कररहा है। इस प्रकार अपनी भगवद्भावमयी पुण्या मानवी लीला समाप्तकर चै० कृ० ११, बुधवार, सं० १६४५ वै० को वे "यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं"दिव्य साकेतको पधारे और श्री-रामसाहचर्य्यको प्राप्त हुए। अनेक विद्वान् गृहस्थ और विरक्त एवम राजा-महाराजा आपके शिष्य तथा भक्त थे। रीवानरेश महाराज

श्रीरघुराजसिंह आदि आपके पुण्याश्रमके समीप पहुंचते ही पादत्राण उतारकर नग्नपाद आपके दर्शनोंको जाते। खेद है कि अद्यावधि आप की जन्मतिथिका शोध नहीं प्राप्त होसका। परञ्च ऐसी आशा है कि वह भविष्यत्‌में उपलब्ध होजाय। यदि उनके किसी कृपाभाजन भक्तके पास हो तो वे उसे सानुग्रह मेरे पास भेजदें।

अन्तमें मैं पूज्यपादपृष्ठ, विपुलगौरवगरिष्ठ, परमब्रह्मनिष्ठ निखिलनिगमागमाचार्य्य, श्रीरामानन्दीय-श्रीसम्प्रदायाचार्य्यचरण अष्टोत्तरशत-श्रीमत्स्वामि मुनिवर पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज (श्रीजानकीघाट—अयोध्यानिवासी) के प्रति सविनय अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूं जिन्होंने सहज-समुदारतापूर्वक "चन्द्रोदय" को "ज्योत्स्ना" से समलङ्कृत करने की कृपा की। और, अपने उन प्रिय बन्धुओंको सप्रेम धन्यवाद देता हूं जिन्होंने उसके सम्पादनादिमें सोत्साह साहाय्य प्रदान किया। अनेक विघ्नोंमें यह ग्रंथ सम्पादित तथा प्रकाशित हुआ है। उनमें एक मेरी विकट अस्वस्थताभी है। अतः उसकी त्रुटियोंके लिए विद्वज्जन मुझे दया-भावसे क्षमा प्रदान करेंगे। क्योंकि प्रमाद मनुष्य का स्वभावगत दोष है। तिसपर भी मुझ सरीखे अल्पज्ञमें तो उसका होना कोई विचित्र बात नहीं। यदि श्रीराघवेन्द्रकी कृपासे उसकी द्वितीयावृत्तिका शुभयोग उपस्थित हुआ और यह शरीर रह गया तो यथासम्भव, जो कुछ त्रुटियां उसमें रह गई होंगी उनके संशोधनका प्रयत्न करूंगा। नहीं तो औरही कोई बन्धु करेगा, जिससे राघवेन्द्र कराएँगे।

ग्रंकार महाराजके कृपापात्र शिष्य श्री ६ स्वामि महान्त श्रीकामदाशरणजी महानुभाव (श्रीरामसखेन्द्रजीकी बगिया) का इस अवसरपर सविनय स्मरण करके चित्तको आनन्द और सन्तोष प्राप्त होता है, जिन्होंने उदारता एवम् उत्साहपूर्वक "चन्द्रोदय" को प्रकाशित करके अपने कर्त्तव्यके पालन-सहित हम लोगोंका विपुल

हितसाधन किया। आपकी सत्यनिष्ठा, उदारता, सदाचारिता तथा शीलसौजन्य आदि शुभगुणोंकी जितनी प्रशंसा कीजाय सो थोड़ी है। आप प्राचीन शैलीके एक सात्त्विक-गुण-सम्पन्न आदर्श वैष्णव महान्त हैं।

श्रीरामसखेन्द्रजीकी
बगिया,
का० शु० ११ शु० सं० १९८५वै०

विनयावनत,
पं० रामानुजशरण,
सम्पादक।

" मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन।"
" निर्दोषो वा सदोषो वा वयस्यः परमागतिः।"
राम प्रान-प्रिय जीवन जीके।
स्वारथ-रहित सखा सबहीके॥

❀ ॐ नमो भगवते सख्यस्वरूपाय श्रीरामचन्द्राय ❀

❀ श्रीहनुमतेनमः ❀

सख्यसिन्धुचन्द्रोदयः

पूर्वालोकः ।

रामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम् ।
सुग्रीवं वायुसूनुं च प्रणमामि पुनः पुनः॥१॥
अज्ञानतिमिरध्वान्तं सद्गुरुः प्रध्वंसकारकम् ।
सख्यसिन्धूदयं पूर्णचन्द्रं रामं प्रणम्य च॥२॥
श्रुतिस्मृतिपुराणेषु तथा रामायणेषु च ।
जीवात्मसख्यसम्बन्धसिन्धुचन्द्रोदयं ब्रुवे ॥३

चन्द्रोदयः—अथ देहिनामस्मिल्लोके अयमेव परमार्थो दृश्यते येन संसारनिवृत्तिः ॥ १ ॥

ज्योत्स्ना—इस लोकमें देहधारियोंका यही परमार्थ देखा जाता है कि जिससे अनादि कालसे प्रवृत्त संसार की निवृत्ति हो ॥ १॥

चं०—साच ज्ञानेनैव नत्वन्यथा, "ऋतेज्ञानान्नमुक्तिरित्युक्ते." ॥ २ ॥

ज्यो०—वह, संसारकी निवृत्ति, ज्ञानसे ही हो सकती है । क्योंकि श्रुतिका वचन है कि विना ज्ञानके मुक्ति नहीं होती।२।

चं०—ज्ञानं च 'सारासारवस्तुविवेकः' ॥३॥

ज्यो०—सार-असार-वस्तुके विवेकको ज्ञान कहते हैं ॥ ३॥

चं०—पश्वादीनां[१] ज्ञानवत्वं तु न भ्रमितव्यम् ।

ज्यो०—यदि कहो कि पश्वादिकोंको भी तो ज्ञान है, तो उनकी मुक्ति क्यों नहीं होती ? तो उसका समाधान करते हैं कि पश्वादिकोंमें ज्ञान नहीं है। उनका ज्ञान समझना भ्रम है ॥ ४ ॥

चं०—यथार्थवस्तुज्ञानस्यैव ज्ञानशब्दार्थत्वात्

ज्यो०—यथार्थ वस्तुका जानना ही ज्ञान शब्दका अर्थ है ५

चं०—तथा च स्मृतिः, "अध्यात्मज्ञाननित्यत्वंतत्त्वज्ञानार्थदर्शनं। एतद्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोन्यथा" ॥ ६ ॥

ज्यो०—अध्यात्मज्ञानको नित्य जानना, यही तत्त्वार्थज्ञानार्थ-दर्शन है। इसीको ज्ञान कहते हैं। इससे अन्य अज्ञान है, यह भगवान्‌ने गीतामें कहा है ॥ ६ ॥

चं०—आत्मानमधिकृत्य प्रवर्तमानं ज्ञानमध्यात्म ज्ञानम् । तत्त्वज्ञानस्यार्थः प्रयोजनं मोक्षः। संसारनिवृत्या स्वरूपप्राप्तिरितियावत्, तस्य दर्शनं,सर्वोत्कृष्टतावलोकनं तदेव ज्ञानमिति॥७॥

ज्यो०—आत्माके अधिकारसे प्रवृत्त ज्ञानको अध्यात्मज्ञान कहतेहैं । तत्त्वज्ञानका अर्थ अर्थात् प्रयोजन मोक्ष

१—ननु तृणभक्षतया सारबुद्धित्वेन शर्करादावसारबुद्धित्वेन पश्वादीनामपि ज्ञानवत्वापत्तौ। तेषामपि मोक्षप्रसंगः इत्याह । पश्वादीनामिति आदिना पक्षिणामपि ।

है। संसारनिवृत्ति-पूर्वक अपने वास्तविक रूपकी प्राप्तिको मोक्ष कहते हैं। उसका दर्शन अर्थात् उसे सर्वोत्कृष्ट देखनाही ज्ञान कहलाता है ॥ ७ ॥

चं०—तत्र[1] यथार्थवस्तु जीवेश्वरयोरनादिसख्य-सम्बन्धः॥ ८ ॥

ज्यो०—वह ज्ञान यह कि यथार्थ वस्तु जीवईश्वरका अनादि सख्य-संबध ही है ॥ ८ ॥

चं०—तथा च श्रुतिः सामरहस्ये। ब्रह्मोवाच रुद्रम्—"कथमेतां भक्तिं सर्वतो भ्राजमानां विद्महे"। रुद्रआह—"एकोऽयमात्मा बहुधाव्य-जायत तत्स्वांशेषु स्वयमेवरन्तुं, अंशाश्च ते यस्य नित्यंसखायः विद्धीत्थं भक्तिं सर्वतो भ्राजमानां"। पुनः ब्रह्मोवाच—"एवं तर्हि किमित्युपचारः श्रूयते"। रुद्रआह—"उपचारापदेशेन करणानां समर्पणात् शुद्धोऽधिकारी भवतीति, भज्येते विभ-ज्येतेति जीवेश्वरावस्था, इति भक्तिः" ॥ ९ ॥

ज्यो०—सामरहस्यकी ऐसी श्रुति है कि ब्रह्माने रुद्रसे पूछा--'सब प्रकार प्रकाशमती इस भक्तिको हम लोग कैसे जानें?' भगवान् शङ्करने कहा-'यह एकही सर्वात्मा अनेक प्रकार

१—तत्र किं यथार्थं वस्तु यज्ज्ञानेन संसार निवृत्तिः इत्याशंक्य तन्निश्चिनोति तत्र यथार्थं वस्त्वित्यादि।

से प्रादुर्भूत हुआ, उसने अपने अंशोंके बीच स्वयम् खेलने की इच्छा की। उसके वे सब अंश अर्थात् जीव नित्य सखा हैं। यह सख्य-सम्बन्ध-ज्ञानही भक्ति है।' पुनः ब्रह्माजीने पूछा --'तो उसका उपाय क्या है?' भगवान् रुद्र बोले,—'उपचारके लक्ष्यसे सकायवाचामनसेन्द्रिय उस परमात्माको आत्मसमर्पण करनाही भक्तिका प्रकार है। शुद्धान्तष्करण (रजस्तमसूरहित-मानस) जीव उसका अधिकारी होसकता है। जीव और ईश्वर का (सख्य-सम्बन्धरूप) भेद मानकर भजन करनाही भक्ति हैं।

चं०—सनो बन्धुर्जनिता सविधाता धामानिवेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानसानास्तृतीये धामन्यध्यैरयंत ॥ १० ॥— यजुः०, अ० ३२, मं० १०

ज्यो०—वह श्रीरामचन्द्रजी हमारे बन्धु अर्थात् भ्राता हैं। वह हमारे पिता और वही हमारे विधाता अर्थात् नियामक एवञ्च समस्त विश्वके ज्ञाता हैं। उनके तृतीय अर्थात् दिव्य धाममें (त्रिपादविभूतिके सर्वोत्कृष्ट पदमें) अमृतमानस अर्थात् मुक्त हुए दिव्य जीव (अक्षर पुरुष) प्राप्त होते हैं ॥१०॥

चं०—त्वंनःसोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः नरिष्यते त्वावतः सखा। ऋ० अष्टक ७, अ० ७, वर्ग १२

अन्वयः। सोम, राजन् त्वं अघायतः नः विश्वतो रक्षात्वावतः सखानरिष्येत् ॥ ११ ॥

ज्यो०—हे सोम (कान्तिमान्), हे राजन् (स्वयंप्रकाशमान्)

श्रीरामचन्द्र, आप पापियों या दुष्टोंसे हमारी रक्षा करें। आपका सखा कभी नष्ट नहीं होता ॥ ११ ॥

चं०—कयानश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा कया शचिष्टया वृता ॥१२॥ ऋ० अ० २, अ० ६, व० २४

अन्वयः। चित्रः सदावृधः सखा कया ऊती कया शचिष्टया वृता नः आभुवत् ॥ १२ ॥

ज्यो०—परम आश्चर्यमय, सदावर्धनशील श्रीरामचन्द्रजी कल्याणवती रक्षा तथा कल्याणमयी महाशक्ति श्रीसीता महारानीके द्वारा और पुनःपुनः परमोपकाररूप कर्मद्वारा हम लोगोंके सखा होते हैं ॥ १२ ॥

चं०—नपापासो मनामहे नारायासो न जह्लवः यदिन्न्विन्द्रं वृषणं सचासुते सखायं कृणवामहे।

ऋ० अ० ६, अ० ४, व० ३८

अन्वयः। न पापासः, न अरायासः, न जह्लवः, मनामहे, यत् इत्नुसुते सचा इन्द्रं वृषणं सखायं कृणवामहे ॥ १३ ॥

ज्यो०—पापी मनसे, दान-यज्ञादिसे शून्य होकर हम लोग भगवान्‌की उपासना नहीं करते, अर्थात् शुद्ध मनसे, दान और यज्ञादि-पुरस्सर प्रभुकी उपासना करते हैं। भगवत्सम्बन्धी यज्ञ-पूजन आदि कर्मोंमें, साथही इस समय, धर्मस्व-

१—उमागौर्यांहरिद्रायां कीर्तिकान्त्यतसीषु च

रूप अथवा सकलकामनापूरक, परमैश्वर्यवान् भगवान् श्रीरामभद्रको सखा बनाते हैं ॥ १३ ॥

चं०—उत् वातपितासि न उत भ्रातोतनः सखा, सनो जीवातवेकृधि ।१४। ऋ० म० ८, अ० ८, व० ४५

अन्वयः। वात नः उत पिता असि, उत भ्राताअसि, उत नः सखा असि, सः नः जीवातवे कृधि॥१४

ज्यो०—हे सर्वव्यापक श्रीरामचन्द्रजी, आपही हमारे पिता हैं, आपही हमारे भ्राता हैं और आपही हमारे सखा हैं। सो आप हमारे जीवनके लिये शक्ति प्रदान करें ॥१४

चं०—द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते, तयोरन्यः पिप्पलंस्वाद्वत्यन्योऽन अन्नभिचाकशीति ॥ १५ ॥—मुण्डकोपनिषत

ज्यो०—दो सुन्दर पक्षवाले सखा साथ रहनेवाले हैं। वे एकही वृक्षका परिष्वङ्ग किए अर्थात् एकही वृक्ष पर दोनों बैठे हैं। उन दोनोंमें से एक उस पिप्पल को स्वाद मान खा रहा है और दूसरा भोजन न करके प्रकाशित है ॥ १५ ॥

चं०—ॐकचित्समये सनकादयश्शेषं प्रति जग्मुः। कथंनु भगवन् पुरुषं वेदज्ञा भक्त्या पश्यन्तिप्राप्नुवन्ति तेनसहक्रीडन्ति। सहोवाच सख्यरसेनैव ।२। श्रुत्वा पुनरूचुः भगवन् क स रसः प्राकृतोऽप्राकृतो वा। सहोवाच अप्राकृतः प्रकृतिपरश्चसख्य-

स्यैव बहूनि पर्य्यायनामानि सन्ति। ३। विश्वासः श्रद्धा। श्रद्धाविश्वासप्रकृतिः। सत्यंज्ञानमनन्तं- ब्रह्म। तद्ब्रह्मसख्यरसात्मकः। श्रीरामएव रसो- वैसः। ४। यस्य दास्यरसोवै पादः। ५। यस्य शान्त- रसो वै शिरः। ६। वात्सल्यः प्राणः। ७। शृङ्गारो- बाहू †। ८। सख्यात्मा। ९। इत्यथर्वणवेदीयपिप्प- लीयशाखायां सख्योपनिषत् ॥ १६॥

ज्यो०—किसी समय सनकादिक शेषजीके पास गए और उनसे पूछा कि---'भगवन्! वेदज्ञ लोग पुरुषोत्तमको किस प्रकार देखते, प्राप्त होते और उसके साथ क्रीड़ा करते हैं? उन्हों ने कहा---'सख्य रसही से'। १। सनका- दिक शेषजी का ऐसा उत्तर सुनकर फिर बोले---'भगवन्! वह रस कौन है? प्राकृत अथवा अप्राकृत (दिव्य)। शेष- जीने कहा---'अप्राकृत, प्रकृतिपर, ऐसे सख्यहीके बहुत से पर्य्याय नाम हैं। ३। विश्वास, श्रद्धा, श्रद्धाविश्वासप्रकृति। सत्यज्ञानरूप जो अनन्त ब्रह्म है, वह सख्यरसात्मक है। वह रस श्रीरामही हैं। ४। जिनका दास्यरस पाद, शान्तरस शिर, वात्सल्य प्राण, शृङ्गार बाहु* और सख्य आत्मा है ॥ १६

---

† शृङ्गारोभयनिष्ठः। यस्य दक्षिणबाहुः नायकः वामश्च नायिका।

* शृङ्गार उभयनिष्ठ है। उसका दाहिना बाहु नायक और बाईं भुजा नायिका है।

चं०—सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जि-तम्। सर्वस्य प्रभुरीशानस्सर्वस्य शरणं सुहृत्॥१७

ज्यो०—सर्वेन्द्रियगुणोंका प्रकाश करनेवाला और सर्वेन्द्रियों से रहित वह परमात्मा सबका प्रभु है, सबका स्वामी और रक्षक है। वह सबका सुहृद् अर्थात् मित्र है। इस स्मृतिसे भी मित्रभाव सिद्ध है ॥ १७ ॥

चं०—भागवतेऽपि, प्रह्लादवाक्यं—"कोऽति प्रयासोऽसुरबालका हरेरुपासने स्वेहृदि छिद्रवत्सतः। स्वस्यात्मनः सख्युरशेषदेहिनां सामान्यतः किं विषयोपपादनैः॥" "अशेषदेहिनामिति" बहुवचनेन प्राणिमात्रस्य सख्यसम्बन्धस्यैवनित्यत्वं दर्शितम् ॥ १८ ॥

ज्यो०—इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में भी प्रह्लादजी का वचन है कि—"हे असुरबालको ! श्रीहरिकी उपासनामें कौनसा बडा परिश्रम है ? क्योंकि अपने हृदयमें छिद्र नाम आकाश के समान वह विद्यमान है। वह अपना आत्मा है और समस्त देहियों का सखा है। तब उसको छोड कर सामान्यतः विषयों के बटोरने और ग्रहण करने में क्या लाभ है ? इस श्लोकमें "देहिनां," इस बहुवचनके कहनेसे प्राणिमात्रका सख्य-सम्बन्धही नित्य है, यह निश्चय दिखलाया ॥ १८ ॥

---

२ सखाजीवः अस्मिन्पुरे देहे वसन्नपि अत्रैववसतः सख्युःयस्यसख्यं ना वैति

चं०—तत्रैव भिक्षुवाक्यम्—"हिरण्मयो मत्सख उद्विचष्टे॥" १९॥

ज्यो०—उसी भागवतमें भिक्षुका भी वचन है कि—'हिरण्मय अर्थात् प्रकाशमय, चिन्मय, मेरा सखा, वह परमात्मा सब कुछ देखता है'॥ १९॥

चं०—तत्रैव नारदवाक्यम्—"तत्र पूर्वतरः कश्चित्सखा ब्राह्मण आत्मवान्"। "तत्र पूर्वतरः" इत्यनेन जीवेश्वरयोरनादिसख्यसम्बन्धो द्योतते॥२०॥

ज्यो०—उसी भागवतमें श्रीनारदजीका भी वचन प्रचीन वर्हीसे है कि उस पुरञ्जनीके चितापर बैठनेपर पूर्व का कोई आत्मवान् ब्राह्मण सखा आया। यहां परभी "पूर्वतर" इस पदसे जीव-ईश्वरका अनादि-सख्य-सम्बन्ध प्रकाशित होता है॥ २०॥

चं०—तत्रैव जन्मान्तरे स्त्रीत्वं गतं पुरञ्जनं प्रति श्रीभगवदुक्तिः—"जानासि किं सखायं मां येनाग्रे विचचर्थह। अपिस्मरसि चात्मानमविज्ञातसखं सखे"। अत्र स्त्रीसन्निधानेऽपि "सखे" इति पुरुषसम्बुद्धया जीवस्य नित्यपुंस्त्वेसिद्धे, स्त्रीत्वा-

---

१—अनीह आत्मा मनसा समीहतो हिरण्मयो मत्सख उद्विचष्टे मनः स्वलिङ्गं, परिगृह्य कामाञ्जुषन्निबद्धो गुणसङ्गतोऽसौ।

१—न विज्ञातो मादृशः सखा येन तादृशमात्मानमपिस्मरसि किमितिसम्बन्धः।

दीनां कल्पितत्वेन भ्रममात्रत्वं दर्शितम् ॥ २१ ॥

ज्यो०—इसी जगह यहभी लिखा है कि—'जन्मान्तर अर्थात् दूसरे जन्ममें स्त्रीभावको प्राप्तहुए पुरञ्जनके प्रति भगवान्का वचन है कि—'हे सखे! हमको क्या तुम अपना सखा जानतेहो जिसके साथ पहले विचरते थे ? और क्या अविज्ञात जिसका सखा है, वह मैं हूँ, ऐसा तुम अपनेको जानते हो ?' यहां पर स्त्रीरूपसे समीपमें स्थित उस पुरञ्जन को भगवान्ने 'सखे', यह पुरुषका सम्बोधन दिया। इससे यह जाना गया और सिद्ध हुआ कि जीवको नित्यही पुरुषत्व है। स्त्रीभावादिकी प्राप्ति केवल कल्पित है, भ्रममात्र है, यह दिखलाया ॥ २१ ॥

चं०—"हंसावहंचत्वंचार्य सखायौ मानसायनौ" इत्यादिश्रुत्यादि[२]प्रामाण्येन स्वाभाविकोऽनयोः सख्य-सम्बन्धो द्योतते, तद्ज्ञानेनैव संसारनिवृत्तिः तत्प्राप्तिश्च तत्स्यात् ॥ २२ ॥

ज्यो०—भगवान् कहते हैं कि---'हे आर्य, हम और तुम, मानसके रहनेवाले हंस, दोनों जन सखा हैं,' इत्यादि प्रमाणों से जीव-ईश्वर, दोनोंका सख्य-सम्बन्ध स्वाभाविक जाना जाता है। इसी सख्य-सम्बन्ध-ज्ञानसे संसारकी निवृत्ति और भगवान्की प्राप्ति होतीहै और नित्यसख्यत्व अधिगत रहता हैं।

२—आदिना स्मृतयोऽपिगृह्यते।

चं०—तथाच श्रुतिः—"यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्। तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति" इति—मुण्डकोपनिषद्। पश्यःजीवः, यदा कर्त्तारं पश्यते। तदा विद्वान्, स्वसख्यसम्बन्धज्ञानवान्। निरञ्जनः, अज्ञानकल्पितसम्बन्धान्तररहितः। साम्यं, सादृश्यम्, सख्यमितियावत् ॥ २३ ॥

ज्यो०—इसी प्रकार श्रुतिभी कहतीहै कि—'जिस कालमें जीव ("पश्यः") रुक्मवर्ण कर्तार, ब्रह्मयोनि, अपने ईशपुरुष को देखता है, उसी कालमें पुण्य-पापोंका विनाशकर निरञ्जन हुआ वह विद्वान् उसी परब्रह्मकी समताको प्राप्त होता है। तात्पर्य्य यह कि जब ब्रह्मसाक्षात्कार होता है तब वह विद्वान्, अपने सख्य-सम्बन्धका जाननेवाला 'निरञ्जन, अर्थात् अज्ञान-कल्पित सम्बन्धान्तर-रहित, उस ईश पुरुषके सख्यभाव (साम्य) को प्राप्त होता है। २३

चं०—तथा च भागवते—"स्वस्थस्तद्व्यभिचारेण नष्टामापपुनस्स्मृतिम्" इति। "तद्व्यभिचारेण" सम्बन्धान्तरत्यागेन। "नष्टां" व्यवहितां। "स्मृतिं" सख्यसम्बन्धरूपाम् ॥ २४॥

१—अज्यतेऽनेनेति अंजनः उपाधिः तस्य च मायिकत्वेनाज्ञानजन्यत्वात् भ्रममात्रत्वे तत्फलितमाह अज्ञानकल्पितेति।

ज्यो०—जैसाकि भागवतमें लिखा है कि भगवान् के वचन को सुनकर वह पुरञ्जन, सम्बन्धान्तरके त्यागसे, सख्य-सम्बन्धरूपा अपनी नष्ट स्मृतिको प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥

चं०—गीतायां भगवतापि—"इदंज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागता" इति । समानो धर्मो यस्य सः सधर्मः सखा। तस्यभावंसख्यमित्यर्थः ॥ २५ ॥

ज्यो०—गीतामें भगवान्ने कहा है कि—'इस ज्ञानका आश्रय लेकर भक्त लोग मेरे साधर्म्य-भावको प्राप्त हुए हैं। जिसका समान धर्महो उसको सधर्म्म अर्थात् सखा और उसके भावको साधर्म्य अथवा सख्य कहते हैं ॥ २५ ॥

चं०—किञ्च जीवेश्वरयोरभेदः सख्यसम्बन्धेनैव सम्भवति, यथा—"प्रियः प्राणसमो वश्यो भ्राता चापि सखा च मे। "सौमित्रिर्मम विदितं प्रधानमित्रं" इत्युपक्रम्य, "अहमप्रियमुक्तः स्यां भरतस्याप्रिये कृते।" एवञ्च सख्ये एव तद्रूपत्वात् द्वैताद्वैतसामञ्जस्यम् ॥ २६ ॥

ज्यो०—और भी विचारने पर यही ज्ञात होताहै कि जीव-ईश्वरका अभेद सख्य-सम्बन्धहीसे होसकता है। श्रीरामजी ने स्वयम् कहा है—'लक्ष्मणकुमार हमारे प्राणसम प्रिय हैं, सदा वशवर्ती हमारे भ्राता तथा सखा हैं।' तथा श्रीसुमित्रानन्दवर्द्धन हमारे प्रधान मित्र हैं, यह विदित है। इस प्रकार

कहकर यहभी कहा है कि— 'हे लक्ष्मण ! यदि भरतका अप्रिय करोगे तो तुमने हमाराही अप्रिय किया'। अतः सख्यही में तद्रूपत्व होनेसे अद्वैतवाद और द्वैतवादकी श्रुतियोंकी सङ्गति लगती है अर्थात् एकवाक्यता होती है ॥ २६ ॥

चं०—"एतेनचात्यद्भुतदर्शनानि शरैर्जनस्थानकृतालयानि । चतुर्दशान्यात्मवरायुधानि रक्षः सहस्राणि निषूदितानि," इति श्रीरघुनन्दनोक्त्या तदभेदद्योतनात्[1] ॥ २७ ॥

ज्यो०—श्रीरामजीने श्रीलक्ष्मणजीके साथ अपना सर्वथा अभेद दिखाते हुए कहा है कि, इन्होंने अद्भुत-दर्शन-कर्म किये हैं, जोकि जनस्थान के बीच बसनेवाले धनुरादि आयुधोंको लिए हुए, चौदह हज़ार राक्षसोंका तीक्ष्ण बाणों से विनाश किया। इस प्रकार श्रीरघुनन्दनजीने श्रीलक्ष्मणजीसे अपना अभेद दिखलाया ॥ २७ ॥

चं०—एवञ्च, "एकमेवाद्वितीयंब्रह्म," इत्याद्या-यावत्यः श्रुतयोऽद्वैतप्रतिपादिकाःसन्ति, तावत्यःसर्वाः सख्यसम्बन्धाभिप्रायेणैव प्रवर्त्तन्ते । इतरसम्बन्धे, पत्यौ स्त्रीभावेन, स्वामिनि दास-

---

१यूयं वयं वयं यूयमत्यासीन्मतिरावयोः । किं जातमधुना मित्र यूयं यूयं वयं वयम् ॥ भाषार्थ--जो हम सो तुम, तुम सो हम रह्योएकही होय। काह भयो यह मित्र अब हम हम तुम तुम दोय ॥

भावेन पुत्रे पितृभावेन सङ्गच्छते जीवस्य वास्तव भेदावश्यदर्शनात्, न तथा सख्ये, मित्रे मित्रभावेनैव जीवप्रवर्त्तनात् ॥ २८ ॥

ज्यो०---इसी प्रकार 'एकही अद्वितीय ब्रह्म है,' ऐसा कहनेवाली जितनी श्रुतियां अद्वैतवादकी प्रतिपादिका हैं, वे सब सख्य-सम्बन्धके अभिप्रायसे ही प्रवृत्त हैं। इतर सम्बन्धमें अभेद नहीं होसकता, जैसेकि पतिमें स्त्रीभावसे, स्वामीमें दासभावसे, पुत्रमें पिताभावसे, निश्चय करनेवाले जीवोंका वास्तविक भेद अवश्य देखा जाता है। इस कारण अद्वैत श्रुतियोंका अभिप्राय इतर सम्बन्धमें यथार्थ नहीं घट सकता। अन्य सम्बन्धोंमें विरोध अवश्यही पड़ेगा। वैसा सख्य-सम्बन्धमें नहीं पड़ सकता, जैसेकि मित्रमें मित्रभावसेही जीवकी प्रवृत्ति है, अर्थात् दोनोंमें एकही मित्र शब्द संलग्न है। ऐसा अन्य सम्बन्धोंमें नहीं है, सब सम्बन्धोंमें शब्दका भेद पड़ेगा।

चं०—अन्ये सम्बन्धास्त्वज्ञानकलपिताः, यथा, "नत्वं विदर्भदुहिता नायं वीरः सुहृत्तव[1]। मायाह्येषा मयासृष्टा यत्पुमांसं स्त्रियं सतीं[2]। मन्यतेचो-

---

१... सुहृत्स्वामी नः सख्या संदर्भविरोधात्। यद्वा अयं सुहृत् सख्या तव वीरः स्वामीनेत्यर्थः।

२...यत् आत्मानं पुमान्सं त्वं स्त्रियः मन्यसे एषा मम मायेत्यर्थः।

भयं यद्व[3] हंसौ पश्यावयोर्गतिम्" इति श्रीमद्भगवदुक्तेः, श्रीमद्भागवते ॥ २९ ॥

ज्यो०—इस हेतुसे अन्य सम्बन्ध तो अज्ञानकल्पितही माने जांयगे, यथा "भागवतमें भगवान्ने पुरञ्जनीसे कहाहै कि,–'तू विदर्भदेशके राजाकी कन्या नहींहै और न यह वीर तेरा सुहृद् अर्थात् प्रिय पति है। किन्तु मेरी रचीहुई माया है जो एकको पुरुष और एकको स्त्री बनाती है। तू दोनोंको मानता है। किन्तु हम और तुम दोनों हंस हैं। अपनी गतिको देखो अर्थात् अपने स्वरूप-ज्ञानको समझो' ॥ २९ ॥

चं०—तस्मात्तैः सम्पूर्णतया संसारनिवृत्तिः तत्स्वरूपभावप्राप्तिश्च न स्यात्। "तेन मैत्री"त्यादि वक्ष्यमाण वाल्मीकिवाक्येन मैत्र्यैव मोक्षप्राप्त्युक्तेः। व्याख्यानं तु अस्यानुपदमेव वक्ष्यते ॥ ३०

ज्यो०—तस्मात् उन सम्बन्धोंसे संसारकी निवृत्ति तथा भगवत्स्वरूप-भावकी प्राप्ति नहीं होसकती, यथा--"तेन मैत्री भवतुते," इत्यादि कहे हुए वाल्मीकिजीके वाक्यसे मित्रभाव हीसे मोक्षकी प्राप्ति कहीगईहै। इसकी व्याख्या आगे कीजायगी।

३—यत्' यतः आवामुभयमपि हंसौ अत्र उभय शब्दस्य द्विवचनाभाव नियमादेकवचनमपिहंसौ, इति द्विवचनेन विशिष्यते इति॥

चं०——ननु, यदैवमस्य नित्यं सख्यं तर्हि कथमज्ञानमिति चेत्।मायामोहितस्य जीवस्य तद्विस्मृतेः कण्ठे मुक्तमणिवत्, यथा च श्रुतिः, "समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः"—मुण्डकोपनिषद् ॥ ३१ ॥

ज्यो०——यदि शङ्का करो कि इस जीवका नित्य सख्य है तो अज्ञान कैसे आया? उसका यह समाधान है कि मायासे मोहित होनेपर जीवको उसका विस्मरण होगया है, जैसेकि कोई कण्ठमें मणि पहिने है परन्तु विस्मरण होनेपर बाहर ढूँढता फिरता है और दुःखी होताहै। इसी बातको श्रुति कह-रही है, यथा—'समान वृक्षमें निमग्न पुरुष (जीव) अनीशा (माया) से मोहित होकर शोचरहा है' ॥ ३१ ॥

चं०—भागवते, "न यस्य सख्यं पुरुषोऽवैति सं[१]ख्युः सखा वसन्सम्वसतः पुरेऽस्मिन्। गुणो यथा गुणिनोऽव्यक्त दृष्टेस्तस्मै महेशाय नमस्करोमि" ३२.

ज्यो०—इसी बातको भागवतमें भी कहाहै—'इस शरीर-रूपी पुरमें बसनेवाले अपने सखा परमात्माके सख्यकर्तव्यको इसी (शरीर) में रहता हुआ सखा जीव नहीं जानता, जैसे अव्यक्त-दृष्टिवाले गुणीको गुण नहीं जानता, ऐसे उस परमा-त्माको मेरा नमस्कार है' ॥ ३२ ॥

---

१ सखाजीवः अस्मिन् पुरेदेहे वसन्नपि अत्रैव वसतः सख्युः (श्रीरामस्य) सख्यं नावैति ॥

चं०— सत्यां स्मृतौ पुनस्तत्प्राप्तिर्भवत्येव। "स्वस्थस्तद्व्यभिचारेणे"त्यादिना तत्रैव भगवदुक्तेः॥ ३३॥

ज्यो०—स्मृति होनेपर उसकी प्राप्ति अवश्यही होतीहै। क्योंकि 'उस मिथ्यादृष्टिके व्यभिचार अर्थात् निवृत्त होनेके कारण वह स्वस्थ हो गया,'— यह भगवान्‌ने उसी जगह कहा है॥ ३३॥

चं०—ननु, मायामोहितस्य जीवस्य तद्भावज्ञानेन तन्निवृत्या तत्प्राप्तावपि पुनः तत्याग इति चेत्, न सख्य-सम्बन्धे तद्रूपत्वात् तत्प्राप्तौ पुनः तद्व्यभिचारात्॥ ३४॥

ज्यो०—ऐसा नहीं। तद्भाव-ज्ञानसे अज्ञानकी निवृत्ति होनेपर भी, तथा परमात्माकी प्राप्ति-दशामें भी, जब माया मोहित करलेगी, तब, फिर, उसका त्याग होजायगा, पुनः जीव संसारमें पड़जायगा,' यह शङ्का नहीं है। क्योंकि सख्य-सम्बन्धमें, ईश्वरकी प्राप्तिमें, पुनः ज्ञानका व्यभिचार नहीं होगा, क्योंकि वह तद्रूप हो गया है॥ ३४॥

चं०—तथा च श्रीरघुनन्दनवाक्यम्–"मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन। दोषो यद्यपि तस्यस्यात्सतामेतदगर्हितम्॥ निर्दोषो वा सदोषो वा वयस्यः परमागतिः"॥ श्रीसीता–

वाक्यमपि रावणं प्रति— "तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि" इति जीवितुम्॥३५॥

ज्यो०—श्रीरघुनाथजीने कहा है कि—'जो हमको मित्र-भावसे प्राप्त होताहै, उसके दोष होने परभी, हम किसी प्रकार उसको नहीं त्यागसकते, ऐसा करना सज्जनोंसे निन्दित नहींहै। सदोष हो अथवा निर्दोष, मित्रही परमगति है। इसी प्रकार श्रीजनकात्मजा श्रीमहारानीजूका भी रावणके प्रति वचनहै कि 'हे रावण, यदि तुझे जीनेकी इच्छाहै तो उन इक्ष्वाकु-कुला-वतंस श्रीरामचन्द्रजीसे मैत्रीकर'। भाव यह कि वह मैत्री नित्य जीवन-स्वरूपा है॥ ३५॥

चं०—"वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य-वर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाऽतिमृत्यु-मेति नान्यः पन्थाविद्यते अयनाय" इति। "अमृतः समभवदिति" श्रुतेः। तथा च मित्रभावेन प्राप्तस्य कथंचनाऽत्यागोक्त्या मैत्र्यैव मोक्षप्राप्त्यु-क्त्या, चान्यभावेन तत्स्वरूपाप्राप्तिः, प्राप्ताव-पि कदाचित्त्याग इति ध्वन्यते॥ ३६॥

ज्यो०—उस आदित्यवर्ण महान्त पुरुष परमात्माके जा-ननेहीसे मृत्युका अतिक्रमण करसकता है। और दूसरा मार्ग मोक्षके लिए नहीं है। वह अमृत अर्थात् मुक्त होगयाहै, ऐसा श्रुति कहती है, जैसाकि श्रीरामचन्द्रजीका वचन है,

कि-'मित्रभावसे प्राप्तहुए जीवको हम नहीं छोड़ सकते,' इस उक्तिसे मैत्रीही मोक्षकी प्राप्तिकी युक्ति है। अन्य भावसे तत्स्वरूपभावकी अप्राप्ति है अर्थात उसका तादात्म्य दुर्लभ है, तथा प्राप्ति होनेपरभी कदाचित् त्यागभी होसकता है, यह ध्वनिसे जनाया ॥ ३६॥

चं०— ननु, मोक्षे किं सुखमस्ति, तत्सदृश सुखभोक्तृत्वम्। तथा च सूत्रम्—"भोगमात्र साम्यलिङ्गाच्च" इति। भोगमात्रे जीवेश्वरयोः साम्यं। "मात्रं कात्स्न्र्येऽवधारणे"। भाष्यकारोऽपि— "ये भोगाः परमात्मना भुज्यन्ते त एव मुक्तैर्भुज्यन्ते" इति ॥ ३७॥

ज्यो०—यदि कहो कि मोक्षमें क्या सुख होताहै, तो इसका उत्तर यह है कि परमात्म-सदृश सुख-भोक्तृत्वही मोक्ष-सुख है, जैसाकि महर्षि व्यासका सूत्र है---"भोगमात्र साम्य-लिङ्गाच्च"। भोगमात्रमें जीव-ईश्वरका साम्य है, मात्र शब्द का पूर्ण और निश्चय अर्थ है। भाष्यकारने कहा है कि—'जो भोग परमात्माको प्राप्त है वही मुक्त जीवोंको प्राप्त होता है'॥ ३७ ॥

चं०—श्रुतिश्च, "यानेवाहं शृणोमि, यान्पश्यामि, याञ्जिघ्रामि, तानेवैते इदं शरीरं वि-

---

१. मोक्षस्य नित्यत्वे इदमेवबीजमन्यथा तत्सदृश सुखभोक्तृत्वंभज्यते इति। २. अमरे।

मुच्यानुभवन्ति। सर्वे क्षयान्तानिचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः"। "संयोगाः विप्रयोगान्ताः मरणान्तञ्च जीवितम्", इति मुनिवाक्यप्रामाण्येन पुनः तत्संसार इति तु न भ्रमितव्यम्॥३८

ज्यो०—जैसाकि श्रुतिमें दिखलाया है कि—'जिसको हम सुनते हैं, जिसको हम देखते हैं, जिसका हम आघ्राण करते हैं, उन्हीं सब भोगोंका, इस शरीरके छोड़नेपर मुक्तजीव अनुभव करते हैं'। यदि कहो कि 'जिनका सञ्चय है उनका एकदिन क्षय अवश्यही होताहै, जो ऊपर जांयगे वे नीचे अवश्य गिरेंगे' 'जिसका संयोग होगा उसका वियोग अवश्यही होगा जो जीवित है वह अवश्य मरेगा', इस वाल्मीकि मुनिके वाक्य-प्रमाणसे मुक्त जीवोंको पुनः संसारमें आना पड़ेगा, तो ऐसा भ्रम कदापि न करना॥ ३८॥

चं०—कथंचिन्मुक्तस्य जीवस्य पुनः संसाराभाव इति सर्वाचार्य्यसम्मतेः। तथा च सूत्रम्—"अनावृत्तिः शब्दात्"। शब्दात् श्रुतिप्रमाणात्॥ ३९॥

ज्यो०—किसी प्रकारसे मुक्त हुए जीवोंको संसार नहीं होता, यह सब आचार्योंका सम्मत है। इसी अभिप्रायका व्यासजीका

---

२. "ननु क्षयान्ता" इति, मुक्तस्यापि कदाचित्संसारः स्यादेव इत्याशंक्याह, क्षयान्ताः।

सूत्रहै—"अनावृत्तिःशब्दात् ।" 'मोक्ष होनेपर जीवकी अनावृत्ति है,' अर्थात् वह संसारमें नहीं आता । इस में शब्द है अर्थात् श्रुति प्रमाण है ॥ ३९ ॥

चं०—स्मृतिश्च, सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च। यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम । मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् । नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ ४० ॥

ज्यो०—स्मृति(भगवद्गीता)काभी वचनहै कि—'इस धर्मका आश्रय लेकर जो मेरे साम्यको प्राप्त हुए हैं, वे सृष्टि होनेपर जन्म नहीं लेते और प्रलय होनेपर व्यथित नहीं होते अर्थात् उनका नाश नहीं होता । और भी भगवान्ने कहा है--- 'जहां जाकर फिर नहीं लौटते वही मेरा परम धामहै। हमको प्राप्त होकर वे महात्मा जो मुक्त हुए हैं, दुःखके स्थान अशाश्वत पुनर्जन्मको किसी प्रकार नहीं पाते। क्योंकि उनको परमात्माकी सिद्धि होचुकी है,' अर्थात् वे अपने शुद्धस्वरूपको प्राप्त होचुके हैं । उनको संसारमें प्राप्त होनेकी शंकाही नहीं है।

चं०—ननु, "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" इति । कामबुद्ध्या स्त्रीभावेन भजतां, तद्भावेन तत्प्राप्तिर्भवेदेव इति चेत् । "मायाह्येषा मयासृष्टा यत्पुमांसं स्त्रियं सतीं" इत्यादि

भगवद्वाक्येन स्वकर्मवैचित्र्यात् स्त्रीपुरुषस्थावरजङ्गमादिनानाविधयोनिंगतस्याज्ञानावृत्त जीवस्य तत्स्वरूपे च स्वाभाविक पुंस्त्वे सिद्धे । अज्ञानादात्मनि स्त्रीत्वंप्रकल्प्य कामबुद्ध्या भजतामखण्डैकरससच्चिदानन्दस्वरूपाप्राप्तिदर्शनात् । अज्ञानमोहितदशायामसाम्यावस्थायां च, यत्र ब्रह्माकारवृत्त्यभावः, तत्र तत्प्राप्तिर्भावनाभोगरूपाऽचिरस्थायिनीति सिद्धान्तः ॥४१॥

ज्यो०—जो जिस प्रकार मुझमें प्रवृत्त होता है, मैं भी उसी प्रकार उसका अभिभावन करता हूं ।' भगवान्‌की इस प्रतिज्ञाके अनुसार कामबुद्धिपूर्वक स्त्रीभावसे भजनेवालोंको भी, उस भावसे उसकी प्राप्ति हो सकतीहै, यदि ऐसा कहो तो "माया ह्येषा मयासृष्टा" अर्थात् वह मेरी बनाई हुई माया है, इत्यादि भगवद्वचनसे, अपने नानाविध-कर्मानुसार स्त्री-पुरुष-स्थावर-जंगमादि विभिन्न योनियोंमें प्राप्त, अज्ञानावृत जीवोंका, उनके स्वरूपमें (जीवत्वमें) स्वाभाविक पुंस्त्व (पुरुषत्व) सिद्धहै । अज्ञानसे अपनेमें स्त्रीत्वकी कल्पनाकर कामबुद्धिसे भजनेवालोंको अखण्ड, एकरस, सच्चिदानन्द-स्वरूपकी अप्राप्ति दिखाई। अज्ञान-मोहित दशामें तथा असाम्य अवस्थामें, जिसमें ब्रह्माकारवृत्तिका अभाव रहताहै, उसकी प्राप्ति भावना-भोग-रूपा, अचिरस्थायिनी होती है, यह सिद्धान्तहै ॥४१॥

चं०—तथा च पाद्मे,—"पुरा महर्षयस्सर्वे दण्डकारण्यवासिनः। दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन्सुविग्रहम्। ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः पुनर्जाताश्च गोकुले" इतिवाक्येन तादृशभावेन मोहितानामपिमुनीनां सद्यस्त्यागदर्शनात्, अवतारान्तरे तत्सङ्ग्रहेऽपिस्वेन तदत्यन्तानङ्गीकाराच्च॥ ४२

ज्यो०—वैसेही पद्मपुराणमें भी लिखाहै—'कि पूर्वमें दण्डकारण्यवासी महर्षियोंने श्रीरामचन्द्रजीके मनोहर रूपको देखकर, उनकी प्रेयसी होकर, उनके साथ विहार करनेकी इच्छा की थी। फिर, उन्होंने स्त्रीरूपसे गोकुलमें जन्म लेकर कामभावसे श्रीहरिका सेवन किया। इस वाक्यसे उस भावसे मोहित होनेपर भी मुनियोंका उस समय त्याग किया। दूसरे, (श्रीकृष्णावतारमें) उनका संग्रह करनेपर भी सर्वथा अंगीकार नहीं किया॥ ४२॥

चं०—श्रीकृष्णावतारेऽपि स्त्रीत्वं गतानां मुनीनां सङ्ग्रहः केवलं स्वभक्तमनोवाञ्छितावश्यसाधनप्रतिज्ञया वास्तवस्नेहाभावस्तु, पुनर्द्वादशे वर्षे तत्त्यागात्स्पष्ट एव॥४३॥

---

१. ननु, कृष्णावतारे तत्सङ्ग्रहः प्रसिद्धः। कथं त्याग इत्युच्यते इत्याहावतारेति। वस्तुतस्तु तत्रापि प्रायः संग्रहो नास्ति इत्याह कृष्णावतारेति।

२. अन्यथा मित्रभावेन संप्राप्तमिति श्रीरघुनन्दनवाक्येन तेषां त्यागो न सम्भवति इति।

ज्यो०—श्रीकृष्णावतारमें भी, गोकुलमें, स्त्रीभावको प्राप्त हुए मुनियोंका जो संग्रह है, वह केवल अपने भक्तोंके मनोवाञ्छित साधनकी सुदृढ़ प्रतिज्ञाके कारण, कुछ वास्तविक स्नेहसे नहीं, क्योंकि पुनः बारह वर्षोंके बाद गोपियोंको छोड़कर भगवान् द्वारका चले गये, यह स्पष्टही है॥ ४३॥

चं०—यतः अज्ञानादात्मनि स्त्रीत्वं प्रकल्प्य जारबुद्धया प्राप्ताः। अतो न निरवधिकानन्दाः। पश्चात् परमरहस्यवित्परममित्रोद्धवमुखेन तादृशोपायमुद्दिश्य गृहीतवान् इति ॥४४॥

ज्यो०—यतः अज्ञानसे अपनेमें स्त्रीत्वकल्पनाकर जारबुद्धिसे भगवान्को प्राप्त हुए, अतः निरवधिकानन्द इसमें नहीं कह सकते। पश्चात्, परम रहस्यवेत्ता अपने मित्र उद्धव के द्वारा भगवान्ने उनको उपदेश दिया कि—'हमको सर्वव्याप्त, अखण्ड, सर्वान्तर्यामी जानकर जो उपासना की जाती है, वही, हमारी मुख्य उपासना है'—'यह उपाय बतलाकर उनको ग्रहण किया॥ ४४॥

चं०—किञ्च, रूपौदार्य्यमोहितायाः, अतिस्नेहेन बुभुक्षया प्रेप्सोः शूर्पणखाया अतिशयपरित्यागात् विरूपकरणाच्च। केवल जारबुद्धयाप्रेप्सोः स्त्रियोऽपि यदि तदप्राप्तिः, तर्हि स्त्रीभावेन भजतां पुंसां तत्प्राप्तिर्न भवतीति किमुतवक्तव्यम्॥४५

ज्यो०—और देखो, रूपौदार्य्यसे मोहित अतिस्नेहवश भोगेच्छासे पीड़ित शूर्पणखाके अतिशय परित्याग एवम् विरूपकरणसे यह फलितार्थ उब्दोधित होता है कि जब केवल जारबुद्धिसे चाहनेवाली स्त्रीको श्रीरामभद्र नहीं प्राप्त होते तो स्त्रीभावसे, जारबुद्धिसे चाहनेवाले पुरुषों को उनकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ?॥ ४५ ॥

चं०—ननु, राक्षसीत्वेन कुरूपतया तत्त्यागः। श्रीकृष्णावतारे वक्रसर्वाङ्गीमपि कुब्जां तथाविध-स्नेहवतीं वीक्ष्य रत्यादिमदध्वंसक छविनिचय-समर्पणपूर्वक तत्स्वीकार प्रसिद्धया। सर्वोत्कृष्ट-नवसौन्दर्यकल्पनसामर्थ्येन तत्रारुचेरेव सूच-नात्॥ ४६ ॥

ज्यो०—यदि कहो कि वह तो राक्षसी थी और फिर कुरूपा थी, इससे उसका त्याग किया। तो यह नहीं कह सकते। उसका त्याग केवल जारबुद्धिसे है। क्योंकि कृष्णावतारमें सर्वाङ्ग टेढ़ी कुब्जाको, उस प्रकार स्नेह देखकर, रति आदि के सौन्दर्य्यगर्वको ध्वंस करनेवाला छविसमूह समर्पण कर अङ्गीकार कर लिया। अतएव सर्वोत्कृष्ट नवीन सौन्दर्य-कल्पना करनेमें समर्थ भगवान्की उसके प्रति अरुचिही का सूचन है॥ ४६ ॥

चं०—एवञ्च जीवेश्वरयोः सख्यसम्बन्धज्ञा-

नमेव यथार्थज्ञानम्, तेनैव तत्प्राप्तिः। पुनस्तद् व्यभिचारोऽन्यभावेनभजतां असाम्येन तदप्राप्तिः। लोकोक्त गलपतितवादन्यायेन कथंचित् प्राप्त-स्यापि पुनस्त्यागसम्भव इति सर्वसम्मत्या सिद्धा-न्तितम् ॥४७॥

इति श्रीमच्चक्रवर्ति-चक्र-चूडामणि महाराजा-धिराजेन्द्रकुमार श्रीलाल श्रीअवधशरणेननिर्मिते सख्यसिन्धुचन्द्रोदये पूर्वालोकः॥

ज्यो०—इस प्रकार जीव-ईश्वरका सख्य-सम्बन्ध-ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है। उसीसे भगवत-प्राप्ति होती है। पुनः उस (जीव और ईश्वरके सहज सख्यसम्बन्ध) ज्ञानका व्यभिचार होनेसे अर्थात् अन्य भावसे भजन करनेवालों को, असाम्य होनेसे,उनकी प्राप्ति नहीं होती। लोकोक्त गले पड़नेके न्यायसे किसी प्रकार प्राप्तिभी हो जाय तथापि उस यथार्थ स्वरूप-ज्ञानके विना उनके त्याग का सम्भव है, यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है ॥४७॥

इति श्रीमच्चक्रवर्ति चक्रचूड़ामणि महाराजाधिराजेन्द्र-कुमार लाल श्रीअवधशरणनिर्मित सख्यासिन्धुचन्द्रोदयके पूर्वालोककी ज्योत्स्ना समाप्त हुई।

❋ श्रीसीतारामोविजयतेतराम् ❋

मध्यालोकः (२)

ॐ योह्वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्दात्मा यत्परंब्रह्म भूर्भुवःस्वः तस्मै वै नमोनमः।

चं०—अथ केचित्तु शृङ्गार एव सर्वरसानां साहित्यमन्तर्भावञ्च मन्यन्ते, यथा—"यदा-यदाहि कौशल्या दासीवच्च सखीवच। भार्यवि-द्भगिनीवच्च मातृवच्चोपतिष्ठति" इति मुनि-वाक्यप्रामाण्यात् तत्तु न सम्भवति। परस्पर-विरोधित्वेन, दिवसेतिनिशावत्, युगपद्प्राप्तेः। समयभेदेन प्रवृत्या। विरोधेतु साहित्याभावः ॥१॥

ज्यो०—अब यह दिखलाते हैं कि किसी-किसीका सम्मत है कि शृङ्गार रसमें भी सब रसोंका साहित्य है अर्थात् सब रस शृङ्गाररसके सहायक हैं और उसीके भीतर हैं। इससे सर्व रसोंका अन्तर्भाव शृङ्गाररसमें भी है, जैसा श्री-चक्रवर्त्ति महाराजका वचन है कि--'समय२ पर श्रीकौशल्या दासीवत, कभी सखीवत, कभी भार्यावत, कभी भगिनीवत् और कभी मातृवत्, स्थित होती हैं,---जैसे सेवाके समय दासीके समान, क्रीड़ा-हास-विलासके समय सखीके सदृश, हमारे अन्य विवाहोंके समय भगिनीके तद्वत् उत्साह प्रकट करती हैं और भोजनके समय माताके तुल्य आचरण करती

हैं । यहां मुनिवचनके प्रमाणसे यह पाया गया कि कौशल्याजीके वस्तुतः भार्याहोनेसे शृङ्गाररस है और उन्हींमें मातृवत्,' यह वात्सल्य रस,' भगिनीवत्', यह सख्यरस एवम् 'दासीवत्,' यह दास्य रस हुआ। इससे सर्व रसोंका अन्तर्भाव शृङ्गाररस में है । सो नहीं सम्भव होसकता । क्योंकि परस्पर एक रस दूसरे रसका विरोधी है, जैसेकि दिन और रात्रिका परस्पर विरोध है, एक साथ दोनों नहीं होसकते । अथवा समयके भेदसे उनकी प्रवृत्ति होती है । जहां विरोध नहीं है वहीं साहित्य होताहै ॥ १॥

चं०—शृङ्गारे सख्यस्य व्याप्तिरिति । सम्भोगाकारे शृङ्गारव्यापारे प्रच्छन्नरूपेण सख्यव्याप्तिः । तद्भिन्नावस्थायां तत्र स्पष्टतया सख्याधिकारः । दाम्पत्ये नायकेव शृङ्गारे सख्यस्थानम् । "यदायदाहीति ।" दासीत्वसखीत्वादि विभिन्न रूपेण तस्यैवांशाः । शृङ्गारस्य न सर्वत्रस्थितिः । भार्य्यायां न सर्व्वदा शृङ्गारः । तस्यां यथावसरे वात्सल्यकरुणादीनामधिकारोऽपि सम्भवति । तत्र सख्याधिकारे रसान्तरान्तर्भावः । शृङ्गारस्य न सख्यभिन्नरसैः मैत्री एवञ्च सख्यरूपा मैत्री तस्य जीवितम् । तद्विना न तस्याःप्रवृत्तिरिति । एकस्यां योषिति समयभेदेन साधव्य-वैधव्य-

वत्, एकस्मिन् पुरुषे पूर्व्ववद्धासकरुणावत्, अन्तःर्हितसख्य सङ्कुचिताशये शृङ्गारे रसान्तरप्रवेशानवकाशः। वात्सल्यावसरे शृङ्गाराप्राप्तिः, शृङ्गारे चशान्ताभावः। सङ्कोचबहुलोऽनङ्गमूलःशृङ्गारः। सत्त्वात्मकत्वात् वीतरागाः ब्रह्मवदनवच्छिन्नव्यापकाः सख्यवात्सल्यदास्यादयः तन्न गुणधर्म्मविरोधात् केवलशृङ्गारे रसान्तरप्रवेशो न सम्भवति॥२॥

ज्यो०—शृङ्गारमें सख्यकी व्याप्ति है। सम्भोगाकार शृङ्गार-व्यापारमें तल्लीन रूपसे सख्यकी व्याप्ति रहती है। उससे भिन्न अवस्थामें, उसमें, स्पष्टही सख्यका अधिकार होता है। दम्पतिमें नायककी भांति शृङ्गारमें सख्यका स्थान है। "यदा-यदाहीति।" दासीत्व-सखीत्व आदि भिन्न २ रूपसे उसीके अंश हैं। शृङ्गारकी सर्व्वत्र स्थिति नहीं है। भार्य्यामें सर्व्वदा शृङ्गार नहीं रहता। उसमें समय-समयपर वात्सल्य-करुणा आदिका भी अधिकार होसकता है। सख्यके अधिकारमें ही, उसमें, अन्य रसोंका अन्तर्भाव होता है। शृङ्गारकी सख्यसे भिन्न अन्य रसोंसे मैत्री नहीं है। एवम्‌ सख्यरूपा मैत्रीही उसका जीवन है। उसके विना उसकी प्रवृत्तिही नहीं। एकही स्त्रीमें, समयभेदसे, साधव्य-वैधव्यकी तरह और एकही पुरुष में पूर्व्ववत्‌हास-करुणाकी भांति जिस समय शृङ्गार, सख्यके अन्तर्हित होनेसे संकुचिताशय रहता है, उस समय,

उसमें रसान्तरके प्रवेशका अवकाश नहीं। वात्सल्यके अवसरमें शृङ्गारकी प्राप्ति नहीं होती, उसीप्रकार शृङ्गारमें शान्तका अभाव है। शृङ्गार सङ्कोचबहुल एवम् अनङ्ग उसका मूल (कारण) है। और सख्य-वात्सल्य-दास्यादि, सात्त्विक होनेंसे, वीतराग एवम् ब्रह्मवत् अपरिच्छिन्न रूपसे व्यापक हैं। अतः गुण-धर्म्मका विरोध होनेसे केवल शृङ्गारमें रसान्तरका प्रवेश नहीं होसकता ॥२॥

चं०—बन्धुत्वाकारः समुदारः सख्यरसः। सर्वसम्बन्धाधारः सर्वभावसमुच्चयाकारश्च, यथामरे—"सगोत्रबान्धवज्ञातिबन्धुस्वस्वजनाःसमाः॥३४॥ ज्ञातेयंबन्धुता तेषां क्रमाद्भावसमूहयोः॥"सच महारसः सहजसाम्यसाधर्म्यसञ्जातस्नेहसम्वलित विश्वासस्थायिकः। तं विनाऽन्येऽपि न सम्भवन्ति। तत्र नैसर्गिक्याःहितेषणायाएकात्मीयतायाश्च एकरस (सर्व्वावस्थायां) व्याप्तिः। एवञ्चाङ्गी-

१. न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चात्मनि। विश्वासस्तादृशः पुंसां यावन्मित्रे स्वभावजे॥ शोकारातिभयत्राणं प्रीतिविस्रम्भभाजनम्। केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम्॥ भाषानुवाद—नहीं मात नहिं नारि, मैं नहीं भ्रात बिच आप। होय न तस विश्वास जस सहज मित्र मैं थाप॥१॥ शोक हरत रिपु-बाध बीच जो होत सहायक॥ प्रीतिसहित विश्वासपात्र सो मनवच-कायक॥ किन यह रत्न-समान रच्यो द्वै 'मित्र, सुआखर। अपनो दजो रूप प्रगट जन सुघर शुभाकर॥

भूत सख्यस्याबाधाधिकारविस्तारे युगपदेव सर्व-साहित्यं सम्भवति, विरोधाभावात् नित्यव्यापकत्वाच्च। रसान्तरान्तर्भोगे तत्स्वरूपे न काचिद्धानिः। अतः सख्ये एव सर्वरसानामन्तर्भावोऽपि युक्तः। तथाचायं पर्य्यवसितार्थः—

"यथा एको हेमो निखिलवलयाद्याभरणातां,
द्रुतं वह्नौतापात् परिणमति दिग्व्योमसदृशम्।
तथैवैकं सख्यं विविधरसरूपे परिणतम्,
क्रमाद्भेदोह्येषां व्यपदिशति नैमित्तिकतया॥"

एको रसः सख्य एव विविधगुणधर्मयोगात् शृङ्गारवात्सल्यादि नानारसरूपे परिणतः॥३॥

ज्यो०—सख्य-रस बन्धुत्वाकार और समुदार है। सब सम्बन्धोंका वह आधार और समस्त भावोंका समुच्चयाकारहै, जैसा अमरकोषमें कहा है—"सगोत्रबान्धवेति।" अर्थात् सगोत्र, ज्ञाति, बन्धु, स्व, स्वजन, यह सब शब्द समानार्थवाचीहैं। तथा बन्धुता और ज्ञातेय सम्पूर्ण भावों अथवा सम्बन्धोंके बोधक हैं। उस सख्य महारसका, सहज समता-सधर्म्मतासे उत्पन्न हुए, स्नेहसे समन्वित विश्वास स्थायी भावहै। उसके विना कोई रस नहीं सिद्ध होसकता। उस सख्यरसमें स्वाभाविक हितैषणा और एकात्मीयताकी, सभी अवस्थाओंमें, एकरस व्याप्ति है। इस प्रकार सख्यके अबाध अधिकारके

विस्तारमें, एकही समय सब रसोंका अन्तर्भाव होसकता है। क्योंकि उसमें विरोध नहीं है और वह नित्य व्यापक है। दूसरे रसोंके अन्तर्भावके समय उसके स्वरूपमें कुछभी हानि नहीं होती। अतः सख्यहीमें सब रसोंका अन्तर्भाव होना ठीक है, पर्य्यवसानके लिए यह रससिद्धान्त समर्पित है,—

जैसे एकै हेम अनल-परितापहिं खाई।
दिशि-नभसों लहिरूप विविध भूषणह्वै जाई॥
तैसे एकहि सख्य निमित बहुभांति न पाई।
नाना रसके रूपमांहि परिणत दिखराई॥

एकही सख्यरस विविध गुण-धर्म्मके योगसे शृङ्गार-वात्सल्य आदि नाना रसोंके रूपमें परिणत हुआ॥ ३॥

च०—तथाचोदाहरणानि—"मयापार्श्वे सधनुषा गुप्तस्य तव राघव। कः समर्थोऽधिकं कर्त्तुं कृतान्तस्यैव तिष्ठतः" इति॥ "अनुगच्छति काकुत्स्थं भ्रातरं पालयन्वने। यं दृष्ट्वा राघवो नैव वृत्तमार्यमनुस्मरेत्" इति, सख्ये वात्सल्यम्। "भवान्स्तु सहवैदेह्या विहरस्व यथासुखम्। अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते" इति, "अहं श्रीरामचन्द्रस्य सखा दासोऽस्मि राक्षस" इति सख्ये दास्यम्॥४॥

ज्यो०---अब इसके उदाहरण देते हैं। लक्ष्मणजीका वचन है कि–'हम धनुषलेकर आपकी रक्षा करेंगे। जब कालके समान हम खड़े होजांयगे तब कौन समर्थ है जो हमसे अधिक पराक्रम करसकेगा?' और भी कहा है—'जो लक्ष्मण अपने भ्राता श्रीराघवेन्द्रकी रक्षा करते हुए वनमें पीछे-पीछे आए, जिनको देखकर उन्होंने (श्रीरामजीने) अपने पिताका मरण स्मरण नहीं किया।'। 'आप श्रीवैदेहीजीके सहित सुखपूर्वक विहार करें, हम जागनेमें, सोनेमें, सब प्रकारकी सेवाकरेंगे। पुनः सुग्रीवजीने भी कहा है कि–'हे राक्षस, मैं श्रीरामजीका सखा और दासहूं।' इससे सख्य रसमें दास्यरस भी आया।४

चं०---"अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान् प्रियदर्शनः। श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणोनामवीर्यवान्॥ अपूर्वीभार्ययाचार्थी तरुणः प्रियदर्शनः। अनुरूपस्य ते भर्ता रूपस्यास्य भविष्यति"। श्रीलक्ष्मणवचनं—"कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि। आर्यस्य त्वं विशालाक्षि भार्या भव यवीयसो" इति सख्ये हास्यः॥५॥

ज्यो०—श्रीरामजीने शूर्पणखासे कहा है कि--'ये हमारे छोटे भैया हैं, बड़े शीलवान् और प्रियदर्शन हैं। ये अपूर्वा भार्या चाहते हैं और नवकिशोर हैं, तुम्हारे अनुरूप भर्ता हैं। लक्ष्मणजीने शूर्पणखासे कहा है कि–'तू दासकी

दासी बनेगी ! हमारे बड़े भ्राता (श्रीरामजी) की भार्या हो तो छोटी महारानी कहाएगी'। इसमें सख्य रसमें हास्यरस भी आया ॥ ५ ॥

चं०—"कथं दाशरथौ भूमौ शयाने सहसीतया। शक्या निद्रामयालब्धुं जीवितुं वा सुखानि वा ॥" इति सख्ये करुणः ॥६॥

ज्यो०—और भी, श्रीलक्ष्मणलालजीने निषादके प्रति कहा है कि 'श्रीवैदेहीजीके सहित श्रीरामभद्रजूको पृथिवीमें सोते हुए देखकर हमको निद्रा कैसे आसकती है, अपने जीवन तथा सुखकी प्राप्तिकी भी इच्छा हम नहीं करते।' इस वचनसे सख्यरसमें करुण-रस आगया ॥ ६ ॥

चं०— यत्तु शृङ्गारस्यैव स्नेहःस्थायी इति स्नेहप्राबल्यात् तत्रैव सर्व्वान्तर्भाव इति। तन्न विश्वासविशिष्ट-स्नेहस्थायिकः सख्यः। तत्र विश्वासस्य वैशेष्यम्, सहज-निष्काम-निर्व्याज स्नेहस्य साम्य-साधर्म्यस्यच प्राधान्यम्। न सर्वेषां स्नेहानामेकत्वम्। तेषां गुण-धर्म-पात्र-वैचित्र्यात् नैमित्तिकतया भेदः। सख्यस्नेहः साम्याकारः, विश्वासाकारश्च, वात्सल्यस्नेहः कारुण्याकारः, दास्यस्नेहः सेवाकारः, तथैव शृङ्गारस्नेहः,

"श्रृङ्गं हि मन्मथोद्भेदः (तथा गमनहेतुकः)" इति साहित्य-सिद्धान्तेन, मनसिजाकारः॥ ७॥

ज्यो०—जो यह कहा है कि श्रृङ्गाररसका स्नेह स्थायिभाव है। उसके प्राबल्यसे उसीमें सब रसोंका अन्तर्भाव है। सो नहीं होसकता। क्योंकि विश्वासविशिष्ट स्नेह सख्यरस का स्थायिभाव है। सब स्नेह एक नहीं हैं। वे गुण-धर्म और पात्रके वैचित्र्यके कारण निमित्तभेदसे भिन्न-भिन्न हैं। सख्य-स्नेह साम्याकार अथवा विश्वासरूप है, वात्सल्यस्नेह कृपा-रूप, दास्यस्नेह सेवास्वरूप, उसी प्रकार श्रृङ्गारका स्नेह "श्रृङ्गंहि मन्मथोद्भेदः" अर्थात् श्रृङ्ग कामका भेद है, साहित्यके इस सिद्धन्तके अनुसार मनसिजाकार है॥ ७॥

चं०—केवलं स्वपाणिगृहीत्यां श्रृङ्गारोधर्मबद्धः शुद्धश्च। अन्यत्र रागात्मकत्वादश्रेयान् निन्दनीयश्च। यथा, श्रीमद्भागवते कुब्जाप्रसङ्गे—

"सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्राप्यमीश्वरम्।
अङ्गरागार्पणे नाहो दुर्भगेदमयाचत॥
आहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया।
रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं सङ्गं तेऽम्बुरुहेक्षण॥
दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्।
यावृणीत मनोग्राह्यमसत्त्वात्कुमनीष्यसौ॥"

दशमस्कन्ध ४८ अ०।

एतेन महर्षिणा व्यासेन, कामबुद्ध्या, परमे-

श्वरस्य, परमाराध्यस्य वरणे, अनश्लाघा, कुत्सा च दर्शिता॥ यदा लीलापुरुषोत्तमावतारेऽपि कामबुद्धिर्निन्दिता तदा मर्य्यादापुरुषोत्तमे श्रीरामभद्रे तस्या का कथा इति भोगानुसन्धानेन स्त्रीभावेन भजतां पुंसां मन्तव्यम्॥ ८॥

ज्यो०—केवल स्वपाणिगृहीतीमें श्रृङ्गार धर्म्मबद्ध एवम् शुद्ध है। अन्यत्र कामप्रधान होनेसे अश्रेय और हेयहै, जैसा श्रीमद्भागवतमें कुब्जाके प्रसङ्गमें प्रकट है—'उन कैवल्यनाथ दुर्लभ ईश्वरको पाकर, अङ्गविलेप करती हुई, उस दुर्भगा (कुब्जा) ने उनसे यह याचना की कि—'हे प्रिय! मेरे सङ्ग कुछ दिन रमण कीजिए, हे कमलदलनयन! आपका सङ्ग छोड़ने की इच्छा नहीं होती।' कठिनतासे आराध्य होनेयोग्य, ऐसे सर्वेश्वरेश्वर विष्णु भगवानका समाराधन करके, उस नीच कुबुद्धि (कुब्जा) ने वरण किया। महर्षि व्यासने, कामबुद्धिसे, ऐसे परमाराध्य सर्वेश्वरेश्वरका वरण करनेके कारण (कुब्जा) को कुबुद्धि, कुजाति कहा, यह श्रृङ्गारभावसे भजनेवालोंके मनन-करनेयोग्य है। जब लीलापुरुषोत्तमावतारमेंभी कामबुद्धिसे वरण करनेकी महर्षि व्यासने निन्दा की तब मर्य्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीमें तो उसकी बातही क्या?॥ ८॥

चं०—श्रीसीतारामौ दिव्यदम्पती शुद्धसच्चिदानन्दमूर्ती श्रृङ्गाराख्यं तयोः प्रेमानिर्वचनीयम्,

निरतिशयपरमानन्दरूपञ्च । तदेव लोकोत्तरं कामादिविकाररहितं वीतरागञ्च । यद्बद्धजीवलोकेषु सुदुर्लभम् । नित्यानां मुक्तानांचापि स्त्र्याकारजीवानां श्रीजनकनन्दिन्याश्रयेण तद्गतात्मतया तदंशभागित्वम् । तथा च कामसङ्कल्पवर्जितपूर्वसंस्कारार्ज्जितपरिमार्ज्जितान्तष्करणानां स्त्रीणां श्रीरामभद्रे शृङ्गारभक्तेरुद्भूतत्वात् दासीत्वेन सखीत्वेन च तत्सुखित्वेन तद्भजनाधिकारित्वम् । स्त्रीमानसे सर्वे मनोविकाराः स्त्र्याकारा इति स्वाभाविकम् ।

यद्यपि सर्वेश्वरः श्रीरामचन्द्रः सर्वकामप्रदः कल्याणकल्पद्रुमः तथापि तेन कामाभिकाङ्क्षा सर्वथैवानुचिता । कैवल्यास्पदत्वाद्यत्र कामाभावः तत्र कामकल्पना गर्हिताऽविहिता च । सा च राजसस्य मानसस्य दोषरूपा रागाकारा मनोविकारा च ॥९॥

ज्यो०—दिव्य दम्पति श्रीसीतारामजी शुद्ध सच्चिदानन्दमूर्ति हैं । उनका शृङ्गारात्मक प्रेम अनिर्वचनीय, निरतिशय-परमानन्दरूप है । वह अलौकिक कामादि विकारोंसे रहित, वीतराग है । बद्धजीवोंके सम्बन्धमें वह बहुतही दुर्लभ है । नित्य और मुक्त स्त्र्याकार जीवोंकोभी श्रीजनकनन्दिनीके आश्रय

से एवम् तद्‌गतात्मा होकर शृङ्गारका अधिकार है।

कामसङ्कल्पवर्जित, पूर्वसंस्काराजित, परिमार्जित अन्तः-करणावाली स्त्रीके हृदयमें यदि श्रीरामभद्रके प्रति शृङ्गार-रसात्मिका भक्ति उत्पन्न हो तो वह दासी—सखीभाव से, तत्सुखानुसन्धायिनी होकर उनका भजन कर सकती है। क्योंकि, स्त्रीके हृदयमें सभी मनोविकार स्त्रीस्वभावानुकूल ही होंगे। ऐसा होना स्वाभाविकही है

यद्यपि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सर्वकामप्रद कल्याण-कल्पद्रुमहैं तथापि उनसे कामाभिकाङ्क्षा करना सर्वथा अनुचित है। कैवल्यपद होनेसे जहां कामका अभाव है वहां काम-कल्पना गर्हिता और अविहिता है। वह रजोगुणी मानसका दोषरूप रागाकार मनोविकार है।

चं०—यत्तु, "वामः कामो मनुष्याणामस्मिन् किल निबध्यते। जने तस्मिन्स्त्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते" इति शृङ्गारे एव स्नेहातिशयः। तदेतत्सख्यस्य व्यापकतया शृङ्गारे तद्भागाभिप्रायेण बोध्यम्॥१०॥

ज्यो०—जो यह कहा गया हैकि—'मनुष्योंका काम बहुत वाम है। जिसमें (काम) बँधजाता है, उसमें, सबसे अधिक गाढ़ स्नेह और दया अवश्यही उत्पन्न होती है।' इस वचन से शृङ्गाररसमें स्नेहकी सबसे अधिकता पाई गई। सो, यह

भी शृङ्गारमें सख्यकी व्यापकता होनेसे उसी (सख्यही)के भागका अभिप्राय है ॥ १० ॥

चं०—"काम एषः (क्रोध एषः) रजोगुणसमुद्भवः" इति भगवद्वचनात् साहित्योदितलक्षणलक्षितस्य मन्मथोद्भेदत्वाद्रागाकारस्य शृङ्गारस्य कल्पना तद्धर्म्मविशिष्टानां रजोप्रधानान्तष्करणानां तमसाच्छन्नानां च देहात्मवादिनां सदैव शङ्कनीयाऽविश्वसनीया च। तत्र अपात्रत्वात् पातित्याशङ्का। भगवद्विषयेऽनुरागस्य लक्षणं शान्तशीलत्वं वीतरागत्वंच। यदि तत्र शृङ्गारः सचालौकिकः। भोगाननुसन्धानात् तत्सुखाकारः। निष्काम-स्नेहत्वात् सख्याकारः। "एकोहिदोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः" इति न्यायेन सात्त्विकान्तष्करणगतत्वात् शृङ्गारस्यापि रागदोषोद्धारः ॥११॥

ज्यो०—'काम (और क्रोध) रजोगुणसे उत्पन्न हुआ है,' भगवान्के इस वचनसे साहित्योदित लक्षणसे लक्षित मन्मथोद्भेद होनेके कारण शृङ्गारकी कल्पना तद्धर्म्मविशिष्ट रजोगुणप्रधान अन्तष्करणवालोंके एवम् तमोगुणी देहात्मवादियोंके लिए सदाही शङ्कनीय और अविश्वसनीय है।

अपात्रताके कारण उससे उनके पतित होनेकी आशङ्का है। ईश्वरमें अनुराग होनेका लक्षण शान्तशीलत्व और वीतरागत्व है। यदि ऐसे महानुभावोंके सात्त्विक हृदयमें भगवत्‌में शृङ्गार उत्पन्न हो तो वह अलौकिक अर्थात् दिव्य शृङ्गार है। भोगका अनुसन्धान न होनेसे वह तत्सुखाकार है। निष्काम स्नेहके कारण सख्य-स्वरूप है। गुणसमूहमें, एक दोष, चन्द्रकिरणोंमें लाञ्छनकी तरह, लीन होजाता है'— इस न्यायसे सात्त्विक अन्तष्करणगत होकर शृङ्गारका भी कामविकार निवृत्त होजाता है और वह इस प्रकार शुद्ध होजाता है॥११॥

चं०—सख्यान्वितः शृङ्गारएव शृङ्गारः। उत्तमप्रकृतिःनायके धीरोत्तमेतु तथैव उत्तमायां स्वीयायां तस्योद्‌गमः। सख्यांशवर्जित-शृङ्गारः नैव शृङ्गारः। स च विषयासक्तिमात्रमेव। तत्र, केवल शृङ्गारे तु—"मामृथा पुरुषोसित्वं मास्मत्वा दसुर्वृकाइमे। क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा॥ विधायालीक विस्रम्भमज्ञेषु कृत-

१. सत्पात्रेष्वैव सद्‌गुणाः स्वरूपतया तिष्ठन्ति। तथाच कुपात्रयोगेनअशुभफलदाः भवन्ति। सत्पात्रे दोषोऽपि चन्दने विषधरइव निष्प्रभावतामेति एवञ्च कुपात्रे सद्‌गुणोऽपि भुजङ्गे क्षीरमिव विकृतियाति। "प्रकर्षमाधारवशं गुणानाम्"—भारविः। तथाच— "गुणाः सुपात्रेषु गुणाः भवन्ति ते दुर्जनं प्राप्य भवन्ति दोषाः। आस्वाद्य तोयाः प्रवहन्ति नद्यः समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः॥

सौहृदाः" ॥ तथा च—"विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनामपि" इति भागवतप्रामाण्येन स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिपुरुषाणामपि भोगमात्रकामुकतया स्नेहलेशाभावात्। न तत्र शृङ्गारः किन्तु शृङ्गाराभास एव ॥१२॥

ज्यो॰—सख्य-सहित शृङ्गारही शृङ्गार है। उत्तम-प्रकृतिवाले धीरोदात्त नायकमें, उसी प्रकार उत्तमा स्वकीयामें उस[शृङ्गार]की उत्पत्ति होती है। सख्यांशवर्ज्जित शृङ्गार तो शृङ्गारही नहीं। वह विषयासक्तिमात्र है। केवल शृङ्गारका तो यह उदाहरण है—'मत मर, तू पुरुष है। क्यों वृकों [भेड़ियों] से अपने शरीरको खिलानेको तैयार होता है? तू नहीं जानता कि स्त्रियोंसे कभी मित्रता नहीं करनी चाहिए। उनका हृदय वृकोंके समान होता है। वे झूठा विश्वास दिखाकर अज्ञानोंमें ही अपनी कपटमयी मित्रता करती हैं। भाव यह कि वेही उनकी माया में ठगाते हैं। जब उर्व्वशी राजा पुरुरवाको छोड़कर चली गई और उसके विरह में वह

सुगुन सुपात्रही मैं रहत स्वरुप मांहि तैसेही कुपात्र पड़ि मन्द होय जात हैं। दोषहू सुपात्र मांहि होत हैं विफल त्योंही ज्यों तरु चन्दन मैं भुजङ्ग लपटात हैं॥ भुजगमुख जाय कै जैसे क्षीर विष होत तैसेही कुपात्रगत गुनहू लखात हैं। तातैं सुपात्र मैं ही गुणको है गौरव सदा सोई अधिकारी तिहि सुभायही सुहात हैं॥

अपरञ्च—गुन सज्जनही मैं सुगुन दुर्जन मांहि विकार।
मधुर बहत जल सरितमैं होत सिंधु पड़ि खार॥

बहुत व्याकुल हुआ उस समय उर्व्वशीने आकर राजाको इस प्रकार समझाया है। और भी कहा है—'स्त्रियोंका और स्त्रीसङ्गियोंका भी कभी विश्वास नहीं करना चाहिए।' भागवतके इस प्रमाणसे स्त्रियोंमें और स्त्री-सङ्गी अर्थात् स्त्रैण-पुरुषोंमें भी भोगमात्र कामुकता होनेसे स्नेहका लेशभी नहीं रहता। अतः वहां श्रृङ्गार नहीं किन्तु श्रृङ्गाराभास है॥१२

चं०— यत्तु श्रृङ्गारभिन्नानामन्येषां स्नेहः तस्मिन्भवतु। तस्य तु श्रृङ्गारवत्येव स्नेह इति तदप्ययुक्तम्। "न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः। मिष्टमन्नमुपानीतमश्नाति नहि तं विना" इति सख्य एव तस्य स्नेहातिशयदर्शनात्॥१३॥

ज्यो०— और जो श्रृङ्गारसे भिन्न अन्यमें स्नेह होता है वह श्रृङ्गारवानही का स्नेह है, यह जो कहा है, सो भी ठीक नहीं। क्योंकि बालकाण्डमें कहा है कि—'श्रीलक्ष्मणजीके विना पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी निद्रा नहीं ग्रहण करते, माता के दिये हुए मीठे २ व्यञ्जनोंका भी उनके विना भोजन नहीं करते।' इस वचनसे सख्यरसमेंही स्नेह का अतिशायन देखा जाता है॥ १३ ॥

चं०— ननु, "अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम्। यन्नर्मैर्नीयते यामः प्रियया भीरु-

भामिनि" इति रुक्मिणीं प्रति भागवतीय श्रीमद्भगवद्वाक्यप्रामाण्येन श्रृङ्गारस्यैव प्राधान्यमिति। तदपि न सम्यक्। स्त्रीषु नर्मेत्यादि स्मृत्या स्त्रियं प्रति नर्मणि च मृषोक्तौ प्रत्यवायभावश्रवणेन तात्कालिकानिर्वचनीयानन्दाय भगवतो मृषोक्तेरेव स्वीकारात्। अतएव—पूर्वं 'निर्गुणं मां विहाय चैद्य शाल्वादिषु यद्दृच्छया किञ्चिद्भजेति,' भगवता श्रीकृष्णेनाज्ञप्तापि रुक्मिणी तद्वाक्यं न स्वीचक्रे ॥१४॥

ज्यो०--यदि कहोकि भगवान् कृष्णचन्द्रजीने जब रुक्मिणीजीसे परिहास किया तब वे विकल होगईं। उसको देख कर भगवान्ने कहाकि-'प्रिये! गृहस्थोंके घरमें सबसे बड़ा लाभ यहीहै जो वे अपनी प्रेयसीके साथ हास-विलास करके समय बिताते हैं। रुक्मिणीजीके प्रति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का वचन जो श्रीमद्भागवतमें है, उसके प्रमाणसे पाया जाता है कि श्रृङ्गारही प्रधान है। तो यह भी सम्यक् नहीं। क्योंकि-- 'स्त्रीषुनर्मेत्यादि' स्मृतिसे स्त्रीके प्रति हास्यमें मृषा कहने से दोष नहीं है। तात्कालिक अनिर्वचनीय आनन्दके लिये भगवान्ने श्रीरुक्मिणीजीसे हास्यमें, मृषा वचन कहे। उन्हींको स्वीकार करते हैं। भगवान्ने यह कहा था कि—हम तो निर्गुण हैं, हमको छोड़कर चैद्य (शिशुपाल)-शाल्वादि

का, आपको, ग्रहण करना उचित था। परञ्च श्रीरुक्मिणीजीने अपने सत्य पातिव्रत्यसे उन हँसीके वचनोंको नहीं अङ्गीकार किया ॥ १४ ॥

चं०—अन्यथा पतिव्रतायाः स्वाम्याज्ञानङ्गीकारे प्रत्यवाय श्रुत्या, तस्यामपि दोषप्रसङ्गः स्यात् । यत्तु अपरिचितशृङ्गाराणामेव सख्यादौ स्नेहः । तथा भूतानां तु पत्न्यामिव नान्यत्र स्नेह इति तदेतत्केषांचिदतिग्राम्यकामुकानामाचारादश्राव्यम् ॥१५॥

ज्यो०—अन्यथा पतिव्रताको स्वामीकी आज्ञा न माननेमें जो प्रत्यवाय (दोष) सुना जाताहै उसका प्रसङ्ग उपस्थित होजायगा। और, जो यह कहा है कि जिनको शृङ्गार-रसका परिचय नहीं है, उन्हींका सख्यादि अन्य रसोंमें स्नेह होताहै और जो शृङ्गार रससे परिचितहैं उनको तो यह विदितहीहै कि जितना पत्नीमें स्नेह होताहै, उतना और किसीमें नहीं। यह भी ठीक नहीं। क्योंकि जो अत्यन्त ग्रामीण तथा कामीजनहैं, उन्हींका ऐसा आचरण होताहै। यह अश्राव्यहै ॥ १५

चं०—सतां तु अपरिचितशृङ्गाराणामपि सख्य एव स्नेहातिशयः, यथा—"त्वयि किञ्चित्समापन्ने किं कार्यं मम सीतया" इति श्रीरघुन-

न्दनोक्तेः। "मत्तःप्रियतरो नित्यं भ्राता रामस्य-लक्ष्मणः" इति श्रीजनकनन्दिन्युक्तेश्च ॥१६॥

ज्यो०—सज्जनोंको तो, अपरिचित-शृङ्गार होनेपरभी सख्य रसहीमें अतिशय स्नेह होताहै, जैसाकि श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवसे कहा है कि—'तुम हमसे विना पूछे लङ्कामें रावणसे युद्ध करने अकेले चलेगये! यदि तुमको कुछ होजाता तो हम जनकनन्दिनीको लेकर क्या करते? राज्य और अपने प्राणसे भी हमको क्या प्रयोजन था'। और श्रीमहारानीजी का भी वचनहै कि—'आर्य-पुत्रको अनुज श्रीलक्ष्मण-कुमार हमसेभी अधिक प्रियतरहैं॥ १६ ॥

चं०—यत्तु कविभिःशृङ्गारस्य रसराजोदाहरणात् तस्यैव प्राधान्यमिति। तत्सख्यभिन्न रसाष्टकाभिप्रायेण, तत्सहितगणनायान्तु तस्यैव प्राधान्यात्। यद्वा कवीनां निरंकुशतया स्वकौतूहलेन, "त्वल्लोचनसमं पद्मं, त्वद्वक्त्रसदृशोविधुः" इत्यादि प्रतिपाद्यलङ्कारे। कविप्रौढोक्तिश्चमत्कारनिष्पत्तिश्च, रोचकमात्रमेव, नतु यथार्थम्। यथा दर्शनशास्त्रं युक्तिप्रधानम्, तथैव काव्यं कल्पना-प्रमुखम्। दार्शनिकः तर्केण तत्त्वानुसन्धाने पटुः, तथा च कविः को-

मलकल्पनायाः चमत्कारसम्पादने कुशलः। बहुमिथ्याभिराशङ्कतया अप्रामाण्यात्। अतएव "स्मृतौ काव्यालापांश्च वर्जयेत्" इत्युक्तम् ॥१७॥

ज्यो०—जो कवियोंने रसके ग्रन्थोंमें शृङ्गारको रसराज बतलाया है और उसीकी प्रधानता मानीहै। सो, वह सख्य-रससे भिन्न जो आठ रस हैं, उन्हीमें उसे प्रधान कहा है। अथवा कविलोग निरंकुश होतेहैं, जैसाकि स्वकौतूहलपूर्वक उपमा देतेहैं कि'पद्म तुम्हारे लोचनके समानहै,''चन्द्रमा तुम्हारे मुखके समानहै,' इत्यादि अलङ्कारोंके ग्रन्थोंमें कहा है। सो कवियोंकी प्रौढोक्ति एवम् चमत्कार-निष्पत्ति है। केवल रोचकता अर्थात रमणीयतामें उसका तात्पर्य है, वह यथार्थ नहीं है। जैसे दर्शन-शास्त्र युक्ति अर्थात तर्क-प्रधान है, तैसेही काव्यमें कल्पना मुख्य है। दार्शनिक तर्कणा-पूर्वक तत्त्वानुसन्धान करताहै और कवि कोमल कल्पना-द्वारा चमत्कारोत्पादन करनेमें कुशल है। अतः वह काव्य-कौशलमयी कल्पना अत्युक्ति और बहुत कुछ मिथ्या होनेकी आशङ्कासे अप्रमाण है॥ १७॥

चं०—यदि तस्यैव प्राबल्यं तर्हि श्रीमद्भरतः भ्रातुस्नेहात् राज्यं त्यक्त्वा तपश्चर्य्यां, श्रीमल्लक्ष्मणः सर्वान् भोगान्स्त्यक्त्वा श्रीरामानुगमनंच न कुर्य्यात् ॥१८॥

ज्यो०—इसीसे स्मृतियोंमें लिखा है कि काव्यालापोंको छोड़देना चाहिये। यदि उसीका (शृङ्गारका) प्राबल्य होतातो श्रीभरतलालजी राज्यको छोड़कर तपस्या क्यों करते? श्रीलक्ष्मणलालजी सर्व भोगोंको छोड़ श्रीरामभद्रजूके साथ वनको क्यों जाते? इससे सख्यका महत्त्व सूचित हुआ ॥१८॥

चं०—यत्तु लोके शृङ्गारस्य प्राबल्यातिशय दर्शनात्। क्वचिल्लोकस्यैव गरीयस्त्वेन तस्यैव-प्राधान्यमिति। तदपि अतिकामुकतया केषांचिद-विवेकिनां मते। न वस्तुतः, वस्तुतस्तु, "सममात्म-समः[1] सखा" इति श्रीरघुनन्दनोक्त्या, वयस्या-नामत्मसादृश्येन दर्शितम् ॥१९॥

ज्यो०—जो लोकमें शृङ्गारका अतिशय प्राबल्य देखा जाताहै और कहींपर उसीको श्रेष्ठ मानतेहैं, सो, वहभी अति-कामपरतन्त्र होनेके कारण। वह अविवेकसे सम्मत है, वस्तुतः नहीं। वस्तुतः (सिद्धान्तमें) तो "सममात्मसमः सखा" 'वह सखा मेरे आत्माके समान है, यह श्रीरघुनन्दनजीने कहा है। इससे अपने वयस्योंको आत्मसमान दिखाया ॥ १९ ॥

चं०—एवञ्च सख्यांशमुपादाय शृङ्गारोऽपि-

१---आत्मा जीवः, तत्सदृशः सखेति जीवस्य सख्युरूपमा-नत्वेन तत्सदृशः सखाऽन्यो नास्ति इति जीवस्य नित्य सख्यमु-ख्यत्व अपर प्रमाणम् ॥

स्नेहवान् इति तत्त्वम्। यत्तु शृङ्गारे तत्त्वं तच्च सख्यस्य व्याप्यांशतया ज्ञेयम्। एवञ्च शृङ्गारोऽपि सख्यस्य भेदः। सच कामविशिष्टसख्यात्मकः। "कान्तोपि कान्ताया सखा" इति व्यवहारः प्रसिद्धः, यथा नायकं प्रति नायिकोक्तयः—"मायाहीत्यपमङ्गलं व्रज सखे"[1]। भागवते—"नत्वं विदर्भदुहिता नाऽयं वीरः सुहृत्तव।" मेघदूते कालिदासोऽपि-"दूरबन्धुर्गतोऽहम्[2]"। पत्यर्थे "सखेति" "सुहृदिति" तथैव सखिवाच्य "बन्धु" पदप्रयोगेन शृङ्गारे सख्यत्वमिति दर्शितम्। वीतरागशृङ्गारः सख्यरूपः। यदुद्वाहे साप्तपदीनं तदेव सख्यमिति, यथा पाणिनिसूत्रम्—"साप्तपदीनं सख्यम्"। अमरेऽपि—"सख्यं साप्तपदीनंस्यात्"। तस्मात्

---

१. मायाहीत्यपमङ्गलं व्रज सखे स्नेहेन हीनंवचस्तिष्ठेतिप्रभुता यथारुचिकुरुष्वैषाप्यु दासीनता। नो जीवामि विना त्वयेति वचनं सम्भाव्यते वा, न वा, तन्मां शिक्षय यत्प्रभो! समुचितं वक्तुं त्वयि प्रस्थिते।

रोकहि जौं तौं अमङ्गल होयरु प्रेम नशै जौं सखे! कहैं जाइए। जौं कहैं जाहु न तौं प्रभुता जौं कछु न कहैं तौं उदासी दिखाइए। जौ "हरिचन्द" कहैं तुम्हरे बिनु जीहैं न तौं यह क्यों पतियाइए। तातैं पयान समै तुमसौं हम का कहैं आप हमैं समुझाइए।

२. भार्य्याविमुक्तोहमित्यर्थः।

सख्याश्रयात् शृङ्गारोपि स्निग्ध इति निर्धारितम्। शृङ्गारः कान्तासक्तिः। सा मर्यादापुरुषोत्तमावतारे भगवतः श्रीरामभद्रे केवलन्त्वाह्लादिनी शक्तिर्भगवत्यां श्रीजानक्यां विशिष्टा, मर्यादिता च। अन्यत्र तस्यानवकाशः। सखीत्वं सामान्यं व्यापकञ्चेति तच्च सख्याभिन्नमेव। लिङ्गभेदेऽपिधर्माभेदात्। अथ च येतु स्वस्मिन् स्त्रीत्वमनुसन्धाय शृङ्गारभावेन एकपत्नीव्रतं श्रीरघुनन्दनं भजन्तो मुमुक्षन्ति ते रघुनन्दने स्वस्योद्वाहितात्वमनुद्वाहितात्वं वा स्वीकुर्वन्ति इति, त एव प्रष्टव्याः ॥२०॥

इसी प्रकार सख्य-रसके अंशको लेकर शृङ्गारभी स्नेहवान् हुआ, यह निश्चय है। जो कुछ शृङ्गारमें तत्त्व है उसे सख्यका व्याप्यांश जानना चाहिए। इस प्रकार शृङ्गार भी सख्यका ही भेद है 'कान्तासखा कान्त,' यह प्रसिद्धही है, जैसा नायिकाके प्रति नायककी उक्ति है---"मायाहीत्यपमङ्गलं व्रज सखे" इति--हेसखे ! जो निषेध करती हूँ कि मत जाव तो अमङ्गल होता है' इत्यादि। श्रीमद्भागवत में भी कहा है 'नत्वं विदर्भदुहितेति' अर्थात न तू विदर्भ-राजकन्या है और न यह तेरा मित्रही (सुहृद्) है।

मेघदूतमें महाकवि कालिदासने भी कहा है "दूरबन्धुर्गतोऽहमिति" अर्थात भार्यावियुक्त हूँ। पतिके अर्थमें सखे, सुहृद्, एवम् सखावाच्य बन्धु पदके प्रयोगसे शृङ्गारको सख्य का अन्तर्भेद दिखाया।

विवाहमें जो सप्तपदी है वह सख्यही है, जैसाकि पाणिनिसूत्रका आशय है—"साप्तपदीनं सख्यम्"। अमरमें भी ऐसाही कहाहै—"सख्यं साप्तपदीनंस्यात्"। इसकाभी वही अर्थ है। अतएव सख्यके आश्रयसे शृङ्गारभी स्निग्ध है।

शृङ्गार कान्तासक्ति है। वह मर्य्यादापुरुषोत्तमावतारमें श्रीरामचन्द्रजीके सम्बन्धमें, केवल आह्लादिनी शक्ति भगवती श्रीजनकनन्दिनीमें ही विशिष्ट तथा मर्य्यादित है। अन्यत्र उसका अवकाश नहीं। सखीत्व सामान्य है, वह व्यापक है और सख्यसे अभिन्न है। लिङ्गभेद होनेपर भी धर्म का अभेद है।

ऐसा सिद्धान्त होनेपर भी जो अपनेमें स्त्रीत्वका अनुसन्धान करके श्रीरघुनन्दनको भजते हैं और उसीसे मोक्ष अर्थात परधाम-प्राप्तिकी इच्छा करते हैं, उनमेंसे कोई उनके साथ अपना विवाह मानते हैं और कोई नहीं मानते। सो उन्हींसे पूछना चाहिए॥ २०॥

चं०—नादसम्। एकपुरुषस्य बहुपत्नीत्वे सख्यलेशाभावःशृङ्गाररसाभासश्च। किञ्च कलहसम्भा-

वनाऽपि। स्त्रीणां सापत्न्यं स्वाभाविकम्। श्रीजनकनन्दिन्या अप्यनभिमतम्, यथा—"स्त्रीभिस्तुमन्ये विपुलेक्षणाभिः त्वं रंस्यसे वीतभयः कृतार्थः।" तथाच भागवते—"एवं संदह्यमानानां सपत्न्याः पुत्रसम्पदा। कृतद्युतिरजानन्ती सपत्नीनामघं महत्" इति॥ न द्वितीयम्। परस्त्रीत्वेन धर्म्मविरुद्धतयास्वप्नेऽपितासुतद्भोगाननुसन्धानात्। "मातृवत् परदारेषु" इति स्मृतेः।

यदध्यात्मबुद्धया श्रीरामःसर्वात्माचसर्वेश्वरोस्ति। सर्वेजीवाः तदीयाःसन्ति। तर्हि तद्विषये न कोऽपिपरकीयो, यतो निजपरभावो लौकिकः। केनाऽपि भावेन तत्सेवनं कार्य्यम्। तन्न। एतद्विमर्शो सर्वेषु भगवद्रूपेषु संलग्नः। स च ईश्वरे सामान्यभावः। विशेषोपासनायां तदेकनामरूपौ ग्राह्यौ। तदन्यरूपे अभिन्नाङ्गबुद्धिरिति सिद्धान्तः। अतः सविशेषोपासनायां भावस्य न व्यापकत्वमिति। "लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्" इति सूत्रप्रामाण्येन भगवतः ऐहिक-पारलौकिकलीलायांलोकवत्त्वनुसरति। यथैश्वर्य्यज्ञानेऽद्वैतः तथैव लीलायां मर्य्यादितद्वैतव्यवहारोऽपि सिद्धः। भगवतः

श्रीरामस्य ऐहिकपारलौकिकोभयलीलायां केवलं दिव्य-दिव्यादिव्यप्रकृतिमात्रभेदः । नामरूपञ्च-लीलातद्धामच उभयत्रैकमेव ।

यदिचेत् भगवद्वस्तुबुद्धया न किञ्चिद्-परकीयं, तर्हि सर्वेषां भगवद्रूपे तत्सर्वावतारे च कथन्न इष्टबुद्धिं स्वीकुर्वन्ति, कथन्न सर्वे ध्येयाः भवन्ति । परन्तु तन्न सम्भवति । तस्मात् भगवतः श्रीरामभद्रस्य मर्य्यादानुसारं धीरोत्तमनायकधर्म्मानुसारञ्च लीलायां स्वपरभेदो मन्तव्यः । एक-पत्नीव्रते श्रीजानकीशे अन्यासां उद्वाहितात्वं न सम्भवति । अनुद्वाहितायाः सर्वथानवकाशः । पुरुषोत्तमः श्रीरामभद्रः स्वभेदान्तरे श्रीकृष्णाव-तारे च धीरललितः दक्षिणश्चनायकोऽस्ति । तत्रैव उद्वाहितात्वमनुद्वाहितात्वञ्च व्यापकमिति

यदि श्रीरामभद्रे साग्रह बहुपत्नित्वं प्रक-ल्प्येत तर्हि एकपत्नीव्रतस्य धीरोत्तमनायकस्यानु-कूलस्यचोदाहरणमेव सर्वथा खपुष्पवत् सम्भा-व्येत । नैकपत्नीव्रतत्वे सर्वेसमर्थाः । तच्च कस्य-चिद्विजितेन्द्रियस्य कार्य्यमस्ति । एकपत्नीव्रतो

नायकः प्रेमव्रतःधर्म्मव्रतश्चास्ति। तस्या धन्या भार्य्या सर्वांशंप्रियानुरागभागिनी भवति। तच्च नायकत्वस्योत्कृष्टपदं, यस्मिन् उदात्तशीलसौन्दर्य्यस्यविस्तारमिति। तन्न सर्वेषां बोधगम्यं, विलासिनामचिन्तनीयञ्च। तत्रैव श्रृङ्गारः।

स्वपुत्रं श्रवणकुमारं प्रति तत्पितुर्तापसान्धस्याशीर्वादेऽपि एकपत्नीव्रतत्वस्य माहात्म्यप्रकाशितमिति, यथा— "या गतिस्सर्व्वभूतानां स्वाध्यायात् तपसश्च या। भूमिदस्याहिताग्नेश्च एकपत्नीव्रतस्य च।" अ० ल० ६३, ४३।

भर्तृहरोऽपि—"एको देवो केशवो वा शिवो वा एको मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा। एकोवासः पत्तने वा वने वा एका नारी सुन्दरी वा दरी वा॥

तस्मात् श्रीरामस्यैका भार्य्या श्रीजनकनन्दिनी। दास्यः सख्यो वा तन्निदेशेनैव श्रीरामभद्रं सेवन्ते। अयमेव सिद्धान्तः॥२१॥

१—आद्य पक्षे रघुनन्दनस्य सख्यं आहोस्विज्जनकनन्दिन्या इति ते पृच्छ्यन्तां। नाद्यम्। अष्टविधेनापि विवाहेन स्वीकृतासु सर्वत्र-पत्नीत्वे नैवव्यवहार प्रसिद्धेः। न द्वितीयमित्याह एक पुरुषेत्यादि।

ज्यो०—पहला नहीं हो सकता। क्योंकि एक पुरुषका अनेक स्त्रियोंमें राग होनेसे सख्यका लेशभी नहीं रहजाता और शृङ्गार-रसाभास होता है। वास्तविक प्रेमके न होनेसे शृङ्गार रस भङ्ग होजाता है। किन्तु कलहकी सम्भावना रहती है। सापत्न्य स्त्रियोंमें स्वभावसेही होता है। श्रीजनकनन्दिनीको भी यह अभिमत नहीं, यथा—"स्त्रीभिरतुमन्य" इत्यादि। इसका भावार्थ यह कि श्रीजनकनन्दिनी विरहसे विह्वल हो श्रीरामचन्द्रजीके प्रति कहती हैं कि 'मेरे जीवनके विसर्जन होनेपर तुम निर्भय अनेक स्त्रियोंसे विहार करके कृतार्थ होगे।' भागवतमें भी राजा चित्रकेतुकी रानियोंके सापत्न्यकी कथा है। रानी कृतद्युतिके पुत्र उत्पन्न होनेसे उसकी सपत्नियोंको बड़ी दाह हुई और उन्होंने उसके पुत्रको विष देदिया। दूसरा भी नहीं होसकता। परस्त्री होनेके कारण वह धर्मविरुद्ध है। स्वप्नमें भी, उसमें, सुखका अनुसन्धान नहीं है। शास्त्र की आज्ञा है कि परदाराओंमें मातृवत् भाव रक्खे।

यदि यह कहिए कि अध्यात्म-भाव से श्रीरामजी सर्व्वात्मा-सर्वेश्वर हैं। सब जीव उन्हींके हैं। तो, उनके लिए परकीय कौन है? अपने-परायेका भाव तो लौकिक है। किसीभी भाव से भगवानका सेवन कर सकते हैं। यह ठीक है, परन्तु यह विचार ईश्वरके स्वरूपमात्रमें अर्थात् उनके सभी स्वरूपोंमें संलग्न होगा। यह भगवतसम्बन्धी सामान्य अर्थात् व्यापक

भाव है। परन्तु विशेष उपासनामें भगवान्‌के अन्यान्य रूपों के प्रति अभिन्नअङ्गबुद्धि रखकर, उनके एक नाम-रूपका स्वीकार किया जाता है। अतः सविशेष उपासनामें वह व्यापकता नहीं घट सकती। "लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्"—इस ब्रह्मसूत्र के प्रामाण्यसे भगवान् अपने ऐहिक और पारलौकिक, उभय लीलाओंमें लोकसिद्ध रीति-व्यवहारोंकाही अनुसरण करते हैं। जैसे ऐश्वर्य्यज्ञानमें अद्वैत है तैसेही लीलामें द्वैतका विशिष्ट व्यवहार चलता है। भगवान् श्रीरामके ऐहिक और पारलौकिक, उभय लीलाओंमें केवल दिव्य और दिव्या-दिव्य प्रकृतिमात्रका भेद है। नाम-रूप-लीला और धाम उनके दोनों ठौर एकही हैं।

जो यह कहो कि भगवतकी वस्तु समझनेसे कुछभी उनके सम्बन्धमें परकीय नहीं है, तो सभी भगवानके अव-तारोंमें क्यों नहीं इष्टभाव रखते, सबको क्यों नहीं अपना ध्येय मानते। परन्तु ऐसा नहीं कर सकते। अतः भगवान् श्रीरामभद्रके मर्य्यादानुसार लीलामें निज-परका भेद मा-ननीय है। एकपत्नीव्रत श्रीजानकीनाथमें दूसरी किसी कुमारीका विवाह नहीं घट सकता और अविवाहिता की बातका तो सर्वथा अवकाशही नहीं। हां, पुरुषोत्तम श्री-रामभद्र अपने दूसरे भेद, श्रीकृष्णावतारमें, धीरललित और दक्षिण नायक हैं। उन्हींमें स्वकीया-परकीयाकी व्यापकता है।

यदि श्रीरामभद्रमें आग्रहसहित बहुपत्नित्वकी कल्पना की जायगी तो एकपत्नीव्रत धीरोदात्त अनुकूल नायकका एक सर्वोत्तम उदाहरणाही आकाशपुष्पवत् होजायगा ; एकपत्नीव्रतत्वमें सब समर्थ नहीं हैं । यह किसी जितेन्द्रियही का कार्य है । एकपत्नीव्रत नायक प्रेमव्रत और धर्म्मव्रत हैं। उसकी धन्या भार्या सम्पूर्ण पति-प्रेमकी भागिनी होती है। वह नायकत्वका उत्कृष्ट पदहै, जिसमें श्रेष्ठ वृत्त-शील के सौन्दर्य का विकाश होता है । वहीं शृङ्गार-रस अपने शुद्ध स्वरूपमें रहता है । उस एकपत्नीव्रत-धीरोत्तम-नायकत्वको सब नहीं समझ सकते । भोगासक्त विलासियोंके लिए वह अचिन्तनीय है । अन्धतापसने जो अन्त-समय अपने पुत्र श्रवणकुमारको आशीर्वाद दिया है उसमें भी एकपत्नीव्रतका माहात्म्य प्रकाशित है, यथा—"जो गति सब जीवोंको स्वाध्याय और तपस्यादिसे प्राप्त होती है (वह तुम्हें प्राप्त हो) ।'

राजर्षि भर्तृहरिने भी कहा है—

चाहिय एकै इष्टदेव रघुवर कै शङ्कर ।
तैसहि एकै मित्र नृपति हो अथवा यतिवर ॥
एकहि हो आवास नगरवर कै बनबीहर ।
एकहि सुन्दर नारि होय किम्वा गिरिकन्दर ॥

श्रीरामभद्रकी एक भार्या श्रीजनकनन्दिनीही हैं, यह निश्चित है। दासियां और सखियां अनेक हैं, जो उनके निदेश से श्रीरामभद्रकी परिचर्य्या करती हैं । यही सिद्धान्त है ॥ २१

चं०—"रुमां मां कपिराज्यंच धनधान्य-पशूनि च। रामप्रियार्थं सुग्रीवस्त्यजेदितिमतिर्मम" इति तारोक्तेः। "त्वयि किञ्चित्समापन्ने किंकार्यं मम सीतया" इति। "धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण। इच्छामि भवतामर्थे एतत्प्रति शृणोमिते॥ यद्विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं चापि मानद। भवेन्ममसुखं किञ्चिद्भस्म तत्कुरुतां शिखीति" ॥२२॥

ज्यो०—ताराका वचन है कि—'सुग्रीवजी श्रीरामचन्द्रजीके प्रियके निमित्त रूमाको, हमको, वानरोंके राज्यको, तथा धन-धान्य-पशु इत्यादिको छोड़ देंगे, यह मेरी धारणा है।' तथा श्रीरघुनाथजीने सुग्रीवसे कहा है कि—'तुमको यदि कुछ होजाता तो हम जनकनन्दिनीको लेकर क्या करते?" और भी कहा है कि—" हे लक्ष्मणलाल! धर्म, अर्थ, काम और पृथिवी, यह सब तुम्हीं लोगोंके लिये हम चाहते हैं। यह हम सत्य प्रतिज्ञा करते हैं। भरतलालके विना, तुम्हारे विना तथा शत्रुघ्नलालके विना हमको जो कुछ सुख हो वह अग्नि जलादे" अर्थात् उस सुखसे कुछ प्रयोजन नहीं॥ २२॥

चं०—एवञ्च सख्युस्त्री सखीति सङ्गच्छताम् "रशनांचापि सा सीतादातुमिच्छति ते सखी"

इति सुयज्ञं गुरुपुत्रं प्रति तथैव श्रीरघुनन्दनोक्तेश्च। "आससादासु वैदेही प्रियां प्रणयिनीं सखीं। तां समाश्वासयामास सखीस्नेहेन सुव्रता॥ तां तु सीता पुनःप्राप्तां सरमां वल्गुभाषिणीम्। परिष्व-ज्यच सुस्निग्धं ददौ च स्वयमासनमिति" युद्ध-काण्डे सीतामुद्दिश्य मुन्युक्तेः। एवञ्च सख्यो-त्कर्षः प्रदर्शितः॥२३॥

ज्यो०—और देखो! सखाकी स्त्री भी सखी कहलाती है, यह अङ्गीकार करना चाहिए। क्योंकि श्रीवाल्मीकिजी लिखते हैं, कि राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्रजीने अपने सखा गुरुपुत्र श्री-सुयज्ञजी से कहा है कि--"जनकनन्दिनी रशना (किङ्किणी) इत्यादि आभूषण आपकी पत्नीको देना चाहती हैं। क्योंकि आपकी पत्नी उनकी सखी हैं।" लङ्कामें जब श्रीजानकीजी की प्रिय सखी सरमाजी उनके पास आईं और सखी-स्नेहसे समझाने लगीं, तब उन प्रिय-बोलनेवालीको प्राप्त जानकर श्रीमहाराणीजीने उनका परिष्वङ्ग (अङ्कमाल) किया और बैठनेके अर्थ सुन्दर आसन दिया। यह युद्धकाण्डमें श्री-जनकनन्दिनीके उद्देशसे मुनिका वचन है। इस प्रकार सख्य-रसका उत्कर्ष दिखाया॥ २३॥

चं०—तस्मात् श्रीरघुनन्दने दृढस्नेहः एका-न्तमकश्च विशेषतः सखाएव श्लाघनीयो नत्वन्ये।

तथाच सुग्रीववाक्यम्—"सर्वथाहमनुग्राह्यो देवतानां न संशयः। उपपन्नगुणोपेतस्सखायस्यभवान्मम॥ सोऽहंसभाज्यो बन्धूनां सुहृदांचैव राघव। यस्याग्निसाक्षिकं मित्रं लब्धं राघववंशजम्॥ आढ्यो वापि दरिद्रो वा दुःखितः सुखितोऽपि वा। निर्दोषो वा सदोषो वा वयस्यःपरमागतिः॥ धनत्यागः सुखत्यागो देहत्यागश्च राघव। वयस्यार्थे प्रवर्तन्ते स्नेहंदृष्ट्वा तथाविधम्॥ तत्तथेत्यब्रवीद्रामः सुग्रीवप्रियदर्शनम्। लक्ष्मणस्याग्रतोलक्ष्म्या वासवस्येव धीमतः॥२४॥

इतिश्री श्रीमच्चक्रवर्तिचक्रचूडामणि श्रीमन्महाराजाधिराजेन्द्रकुमार श्रीलाल श्रीअवधशरणनिर्मिते सख्यसिन्धु-चन्द्रोदये मध्यालोकः।

ज्यो०—अतः श्रीरघुनन्दनमें दृढ़ स्नेह एवम् ऐकात्म्यरखनेवाला प्रशंसनीय सखाहीहै, दूसरा नहीं। सुग्रीवजीने कहा है कि—'हे रघुवंशमणे! हमतो अब देवताओंसे भी अनुग्राह्य हैं अर्थात सब देवता भी हमपर अनुग्रह करेंगे। इसमें कुछभी संशय नहीं है। उपपन्न दिव्य गुणोंसे युक्त आप जिसके सखा हुए हैं, वह मैं, अपने बन्धुओं तथा मित्रोंमें भी माननीय हुआ। क्योंकि अग्निको साक्षी देकर रघुवंशमें

उत्पन्न आप हमारे सखा बने । चाहे धनी हो या दरिद्र, दुःखी या सुखी हो, सदोष अथवा निर्दोष हो, सखाकी परमगति सखाही है । चाहे धनका त्याग होजाय, परमसुखका त्याग होजाय, शरीरका भी त्याग क्यों न होजाय, पर पूर्ण स्नेही अपने सखाके अर्थ अच्छे लोग तत्पर हो जाते हैं । इस प्रकार सुग्रीवके वचन सुनकर श्रीरघुनाथजीने उनसे कहा कि— बहुत ठीक है, ऐसाही है ।" यह लक्ष्मणजीके सामने, जैसे इन्द्रके सामने कहा जाय तैसे, श्रीरामजीने कहा है ॥ २४॥



॥ श्रीसीतारामोविजयतेतराम् ॥

❁ श्रीहनुमतेनमः ❁

❁ पश्चिमालोकः ❁

ॐ यो ह वै श्रीरामचन्द्रःसभगवान् यः सच्चिदानन्दाद्वैतैकरसात्मा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ।

चं०—"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः" इति भगवद्वचनात् जीवलोक ईश्वरांश इति विदितम् । यादृशः स ईश्वरः पुरुषोत्तमः तदंशजीवलोकोऽपि तथैव पुरुषाकारोस्ति इति स्वाभाविकम्, यथा श्रीमद्भगवद्गीतायां—"द्वाविमौपुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च । क्षरः सर्व्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षरउच्यते॥ उत्तमःपुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः" ॥ क्षरशब्दनिर्दिष्टः पुरुषः क्षरस्वभावो बद्धजीव इति विज्ञेयम् । तथा च अक्षरशब्दनिर्दिष्टः पुरुषो क्षरणलक्षणावागमनविमुक्तः, निश्चलः, परधाम्निगतः, स्वरूपेणस्थितो, मुक्तात्मा कूटस्थ इत्युच्यते । तयोरन्यः पुरुषोत्तमः श्रीरामचन्द्रोस्ति । उभावपि क्षराक्षरौ पुरुषौ इति भगवतः श्रीकृष्णस्य वचनात् प्रसिद्धम् । तयोरुत्तमः पुरुष ईश्वरोऽस्ति, यस्यांशो जीवलोकः

सनातनः। यतः स ईश्वरः पुरुषोत्तमः पुरुषाकारोऽस्ति, अतः "भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च" इति ब्रह्मसूत्रप्रमाणात् जीवः पुरुषोत्तमस्य भगवतः श्रीरामभद्रस्य समलिङ्ग इति निष्पन्नम्। तस्मात् ईश्वरस्य पुरुषोत्तमस्यचांशजीवलोकः तल्लिङ्गः पुरुषलिङ्गञ्चास्ति। तदेव सख्यम्। जीवो नित्यः पुरुषाकारःपुरुषोत्तमस्य श्रीरामभद्रस्य अयंसखा। शब्दशास्त्रतोऽपि जीवात्मसखिशब्दाः पुल्लिङ्गत्वेन समानाः।

यत्र 'स न स्त्री न पुरुषो न नपुंसकमिति' ख्यातं तत्र मायिकस्त्रीपुरुषादौ मायायाञ्च तात्पर्य्यमिति, यथा— 'मायाह्येषा मयासृष्टा यत्पुमांसं स्त्रियं सतीं।" किन्तु ईश्वरांशस्य जीवस्य शुद्धस्वरूपः पुरुषाकारोऽस्ति। मायायास्त्र्याकारः तथाच ईश्वरस्य पुरुषाकारः। चैतन्यस्य निराकारावस्थामुद्दिश्य "न स्त्री नचपुमानेष न चैवायं नपुंसकमिति" ख्यातम्। परञ्च साकारावस्थायां स नित्यपुरुषाकार इति निश्चितम्

यदा सविशेषत्वे पुंस्त्वं तदा निर्विशेषत्वेऽपि तस्याभिव्याप्तिरिति सिद्धम्। यदि चेत्

काष्ठेऽग्निर्नास्ति तदा तत्र तस्योद्भवः कथं स्यात्। अतएव तस्य पुरुषस्य जीवस्य च पुंस्त्वं सनातनसिद्धम् ॥१॥

ज्यो०—"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।" भगवान् श्रीकृष्णके इस वचनसे यह विदित हुआ कि जीव ईश्वरका अंश है। जैसा वह ईश्वर पुरुषोत्तम है वैसाही उसका अंश जीव भी पुरुषाकार है। ऐसा होना स्वाभाविकही है, जैसा गीतामें कहा है कि—" लोकमें दो प्रकारके पुरुष हैं, क्षर और अक्षर। तीसरा पुरुषोत्तम है जिसे परमात्मा कहते हैं। क्षर-शब्दसे बद्ध जीव और अक्षरसे क्षरणरूप-आवागमनसे विमुक्त, परधामगत, स्वरूपमें स्थित मुक्त जीव निर्दिष्ट हैं, जिन्हे कूटस्थ भी कहते हैं। क्षर और अक्षर, इन दोनों प्रकारके पुरुषों (जीवों) के परे पुरुषोत्तम श्रीरामजी हैं। भगवान् श्रीकृष्णके वचनानुसार दोनों प्रकारके क्षर (बद्ध) और अक्षर वा कूटस्थ (मुक्त) जीव पुरुषही हैं। उनमें अपेक्षाकृत उत्तम पुरुष ईश्वर है, जिसके अंश अविनाशी जीव हैं। जब वह ईश्वर पुरुषोत्तम पुरुषाकार है तब "भोगमात्र साम्यलिङ्गाच्च"—ब्रह्मसूत्रके इस प्रमाणसे जीव पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामभद्रकाही समलिङ्ग है, यह निष्पन्न हुआ। अतः उत्तम पुरुष जो ईश्वर है उसका अंश जीवभी उसीके लक्षण एवम् लिङ्गका हुआ। यही साम्यलिङ्ग सख्य है। यह जीव नित्य

पुरुषाकार पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीका सहज सखा है। जीव, आत्मा और सखापद, पुंबोधकत्वमें समानही हैं अर्थात पुल्लिङ्ग हैं।

जहां यह कहा गया है कि—'वह (परमात्मा) न स्त्री, न पुरुष और न नपुंसक है'। सो मायिक स्त्री-पुरुषादिसे, मायासे उसका तात्पर्य्य है, जैसा श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌का वचन है कि——'वह मेरी रची हुई माया है जो किसी को पुरुष और किसी को स्त्री बनाया करती है।' किन्तु ईश्वरांश जीवका शुद्ध स्वरूप तो पुरुषाकारही है। वे, ईश्वर और उसके अंश जीव, दोनों हंस अथवा पुरुष हैं। मायाका स्त्री रूप है और ईश्वरका पुरुष। चैतन्यकी निराकारावस्थाको लक्ष्य करकेही " न स्त्री वै न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः " कहा गया है। परन्तु साकारावस्थामें वह नित्य पुरुषाकारही है, यह निश्चित है।

जब साकारावस्थामें पुरुषत्व है तब निराकारावस्थामें भी उसकी (पुरुषत्वकी) व्याप्ति सिद्ध है। यदि काष्ठमें अग्नि नहीं है तो उसमें वह उत्पन्न कैसे होगी। अतएव उस पुरुष का अथवा जीवका पुरुषत्व सनातनसिद्ध है॥ १॥

चं०—चतुर्विध पुरुषार्थानां मोक्षएव परमपुरुषार्थः। तस्य ज्ञानमेव समुपायः। यथा— "ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः"। तस्य पुंस्त्वे अधिकारित्वम्।

अस्य सर्गस्य पूर्वं सद्रूपपुरुषोत्तम एवासीत्। ततो अष्टधाप्रकृतिरजायत। प्रलयावस्थायां प्रकृतिः क्रमेण पुरुषोत्तमे लीना भवति। अतः निर्विकारावस्थायां कैवल्येस्थित्याञ्च स्वरूपेण स्थितस्य पुरुषस्य केवलं पुरुषाकारत्वमिति ज्ञातम्। यतः सहजविकृतिस्वभावा सदाऽसदाभासस्वरूपा च प्रकृतिः, तत् प्रतिकृतिश्च सर्गेऽस्मिन् मोहयोनिः नार्य्येवास्ति। अतः तस्या मोक्षे ज्ञानेच सामान्यतया अनधिकारः, यथा— "तपःप्रधाना नार्य्यः कैवल्यानुपयोगित्वात्।" स्वपातिव्रत्योत्कर्षात् तपश्चर्य्यायास्सा भर्तृसायुज्येगता। एवञ्च तद्द्वारेण तस्य मोक्षप्राप्तिः। तस्मात् पुरुषस्य प्राधान्यम्। न स्त्रीणां स्वतन्त्राधिकारित्वम्।

पुरुषसंस्कारविशिष्टस्य पुरुषस्य मानसे कथं स्त्रीभावोदयः। तत्र स्त्रीत्वारोपणं संस्कारसाङ्कर्य्यमात्रमेव। यदिचेत् जन्मजन्मान्तरेऽपि तद्भावनाभ्यासः क्रमेण भवेच्चेत्तदा दैवयोगात् स्त्रीभावप्राबल्यात् स्त्रीयोनिगतानां भावुकानां शृङ्गारस्याधिकारो भवेदिति। तत्र प्रायः

स्त्रियः स्वभावसिद्धाज्ञानत्वात् शृङ्गारस्य कामप्रधानत्वाच्चाध्यात्मज्ञानस्यानवकाशः । यद्विना परमपुरुषोत्तमस्यप्राप्तिरूपमोक्षः, अनावृत्तिपदञ्च सर्व्वथैव सुदुर्ल्लभम् ।

स्थूलदेहस्यप्रतिबिम्बं सूक्ष्मं, तत्संस्कारावशेषमात्रमेव लयाकारं कारणशरीरम् । तस्मात् आकारणकलेवरं पुंस्त्वं वा स्त्रीत्वंच व्याप्तम् । अतएव पुंसि स्त्रीत्वकल्पनायामत्यनुपपत्तिः । तत्र स्थूलदेहाभिमानत्वात् भावनाव्यभिचारः। वाङ्मनोगोचरातीते निर्विकल्पतत्त्वेऽतीन्द्रियविषये कथं गतिः।

अतएव प्रायः पुंसि शृङ्गारभाव अनुपयोगी, अस्वाभाविकश्च दर्शितः । यदि तस्मिन् स्त्रीत्वसिद्धिर्भवति तद्दैववैचित्र्यम्, पात्रवैलक्षण्यञ्च। भावनाप्रकर्षात्समानाकारापत्तिमात्र कस्मिंश्चिद्पुरुषान्तष्करणे स्त्रीत्वाभासः। सच भगवद्दर्शनानुभवेन तद्गुणश्रवणेनवा स्वान्तस्संस्कारानुसारनिसर्गोद्रेकत्वात् भक्तिप्रकारः । परञ्च न तत्र स्थायित्वमिति । देहाभिमानप्राबल्यात् तद्भङ्गोऽपि सम्भवः ॥२॥

ज्यो०—चार प्रकारके पुरुषार्थोंमें मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है। उसका उपाय ज्ञान है, जैसा सिद्धान्त है कि बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं होती ("ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः")। उस ज्ञानका अधिकारी पुरुषही है।

सृष्टिके पूर्व केवल सद्रूप (सत्तामात्र) पुरुषोत्तम ही था। उससे आठ प्रकारकी प्रकृति उत्पन्न हुई। प्रलयकालमें क्रमशः प्रकृति पुरुषमें लीन होती है। निर्विकार अवस्थामें, कैवल्य-स्थितिमें, स्वरूपमें स्थित पुरुषका केवल पुरुषाकार रहता है, यह ज्ञात हुआ। यतः प्रकृति सहज-विकृति-स्वभावा एवम् सदा असदाभास-स्वरूपा है तथा उसकी प्रतिकृति (प्रतिरूप) इस संसारमें मोहयोनि स्त्रियां हैं। अतः उनकोमोक्ष औरज्ञानकाप्रायःअधिकारनहींहै,जैसाशास्त्र-मतहै कि—'नारी तपप्रधाना हैं, क्योंकि वे ज्ञानके लिये उपयोगिनी नहीं हैं।' अपने पातिव्रत्यके उत्कर्ष और तपस्यासे वे पतिमें लीन होती हैं। इस प्रकार पुरुषद्वारा उनकी मुक्ति होती है। अतः पुरुषकी प्रधानता है ; स्त्रियोंको स्वतन्त्र अधिकार नहीं है।

पुरुष-संस्कार-विशिष्ट अर्थात शुद्ध पुरुषके मनमें स्त्रीभावका कैसे उदय होसकता है? यदि उनमें स्त्रीत्व-कल्पना उत्पन्न होती है तो वह संस्कारकी सङ्कर-

तामात्र है । यदि जन्म-जन्मान्तरतक स्त्रीभावनाका अभ्यास क्रमसे होता रहे तो दैवयोगसे, स्त्रीभावकी प्रबलता से, वे भावुक स्त्री-शरीरको प्राप्त होंगे । तब कहीं वे शृङ्गारके पात्र होसकेंगे । तब भी स्त्रीमें प्रायः स्वभावसेही अज्ञान और शृङ्गारके कामप्रधान होनेके कारण ("यदपि योषिता अनअधिकारी") उन्हें अध्यात्मज्ञानकी सुविधा नहीं, जिसके विना परम पुरुषोत्तमकी प्राप्तिरूप मोक्ष और अनावृत्तिपद (आवागमन-राहित्य) अत्यन्त दुर्लभ है ।

स्थूल देहका प्रतिबिम्ब सूक्ष्म शरीरहोता है अर्थात् स्थूल देह ही के रूपगुणके अनुसार, उसकी छायाके तद्वत् सूक्ष्म शरीर होता है । और कारण शरीर (जिसकी सुषुप्तिमें स्थिति है) उन्हीं स्थूल-सूक्ष्मका संस्कारशेषमात्र लयरूप होता है । इसलिये स्त्रीत्व वा पुरुषत्व कारण-शरीरपर्य्यन्त व्याप्त होता है—आशय यह कि यदि स्थूल शरीर स्त्रीका होगा तो सूक्ष्म भी वैसाही होगा और कारणमें भी उसीकी व्याप्ति होगी और यदि स्थूल शरीर पुरुषाकार हुआ तो सूक्ष्म भी तदनुसार ही होगा और कारणमें भी वही गतार्थ होगा, उसीकी छाया होगी । अतः पुरुषोंको स्त्रीभाव धारण करनेमें बड़ी बाधा है । स्थूलदेहाभिमान अत्यन्त कठिन होता है । उसके कारण भावनामें व्यभिचार होजायगा अर्थात् स्त्री-भावना शुद्ध नहीं होसकती । भावनाकी इस सङ्करताके कारण वाणी और मनसे अगोचर, निर्विकल्प-तत्त्व (जिसमें

कल्पनाकी गति नहीं) तथा अतीन्द्रिय-विषय परमात्मामें कैसे गति होसकती है ? अतएव पुरषोंके लिये शृङ्गारभावना किम्वा स्त्रीत्व-कल्पना प्रायः अनुपयोगिनी और अस्वाभाविकी दिखलाई दी। यदि पुरुषोंमें स्त्रीत्वकी सिद्धि हो तो वह दैवकी विचित्रता और पात्रकी विलक्षणता है। भावनाके प्रकर्ष होनेसे समानाकारकी प्रतीतिमात्र किसी-किसी पुरुषके अन्तष्करणमें स्त्रीत्वका आभास होता है। भाव यहकि जब भावना पराकाष्ठाको पहुँचती है तब जिसकी भावना की जातीहै, आत्म-विस्मृति होनेसे उससे, एकाकारकी प्रतीति होती है। इसी सिद्धान्तानुसार पुरुषके अन्तष्करणमें स्त्रीत्वाभासमात्र होसकता है। वह, भगवद्रूपके अनुभवसे, अथवा गुणश्रवणसे, उस अन्तष्करणविशेषके संस्कारानुसार स्वतः उत्पन्न होनेसे भक्तिका प्रकार है। परन्तु वह स्थायी नहीं; देहाभिमानकी जागृतिसे उसका भङ्ग होसकता है ॥ २ ॥

चं०—यतः, आर्यः श्रीरामचन्द्रः एकपत्नीव्रतः, धीरोदात्तः, नायकोत्तमः। परदारापराङ्मुखः। तत्र बहुभार्य्या-प्रसङ्गाभावः, परकीयास्नेहातिशयहानिः, यथा, मातरं श्रीकैकेयीं प्रति श्रीभरतकुमारोक्तयः—

"कच्चिन्न परदारान्वा राजपुत्रोऽभिमन्यते।
कस्मात्स दण्डकारण्ये भ्रातारामो विवासितः॥"

तथा च श्रीभरतकुमारं प्रति कैकेय्याःउक्तयः—
"न रामो परदारान् स चक्षुर्भ्यामपि पश्यति"।
श्रीमद्भागवतेऽपि—
"एकपत्नीव्रतधरो राजर्षि चरितः शुचिः।
स्वधर्म्मं गृहमेधीयं शिक्षयन् स्वयमाचरन्॥"
श्रीमद्रामायणे च—
न सीतायाः परां भार्य्यां वव्रे स रघुनन्दनः।"
यज्ञे-यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकीकाञ्चनीभवदिति"
प्रमाणात् श्रीरामभद्रस्य एकपत्नीव्रतत्वं निश्चितमिति। विरुद्धप्रमाणाभावे सन्देहस्यानवकाशः।

यदि चेत् तस्य भद्रस्य काप्यन्या पाणिगृहीतीभार्य्या श्रीजनकनन्दिन्याः सपत्नीभवेयुश्चेत्तद् यज्ञविधिपूर्त्तये हेममयश्रीसीतामूर्त्तिनिर्माणस्य किम्प्रयोजनमिति। अतः शुद्धशृङ्गारभागिनी भोगिनी च तस्याद्वितीया पाणिगृहीत्यर्द्धाङ्गिन्यार्या श्रीजनकनन्दिन्येवास्ति, इति सर्वसम्मतम्। तदितरा अपराः सन्ति। अन्यस्यां शृङ्गाराभासः, नतु शृङ्गारः॥३॥

ज्यो०—यतः आर्य श्रीरामचन्द्रजी एकपत्नीव्रत,

धीरोदात्त नायकोत्तम और परदारापराङ्मुख हैं। उनमें बहु-भार्याके प्रसङ्गका अभाव और परकीयाप्रेमकी अतिशय हानि है, जैसा मातुश्री कैकेयीके प्रति श्रीभरतकुमारका वचन है—'क्या किसी परस्त्रीकी राजकुमार श्रीराघवेन्द्रने इच्छा की है? किस लिए वे दण्डकारण्यमें निर्वासित किए गए?

श्रीकैकेयी अम्बाने भरतकुमारसे कहा है—"श्रीराम-भद्र परस्त्रीको आंखोंसे देखते भी नहीं।

श्रीमद्भागवतमें भी कहा है—'श्रीरामचन्द्रजी एक पत्नीव्रतधर, राजर्षि और पुण्यचरित हैं। अपने आचरण से गृहस्थोंको स्वधर्मकी शिक्षा देते हैं।'

इसी प्रकार श्रीमद्रामायणमेंभी—'श्रीसीताजीके अति-रिक्त दूसरी किसी भार्याका श्रीरघुनन्दनने वरण किम्वा पाणि-ग्रहण नहीं किया। हर एक यज्ञमें वे श्रीसीताजीकी स्वर्णमयी प्रतिमा स्थापित करते थे।

इन प्रमाणोंसे श्रीरामभद्रका एकपत्नीव्रतत्व निश्चित है। इसके विरुद्ध कोई प्रमाण न होनेसे इसमें सन्देह करने का अवकाशही नहीं है। यदि श्रीरामभद्रकी कोई अन्य पाणिगृहीती पत्नी, श्रीजनकनन्दिनीकी सपत्नी होती तो यज्ञोंमें सुवर्णमयी श्रीसीतामूर्त्तिके स्थापन करनेका क्या प्रयोजन था! अतः शुद्ध शृङ्गारकी भागिनी और भोगिनी उनकी एकमात्र पाणिगृहीती अर्द्धाङ्गिनी आर्या श्रीजनकनन्दिनी ही हैं, यह सर्वसम्मत है। उनसे इतर परदाराएँ हुई। परदा-राओंमें शृङ्गाराभास होता है, न कि शृङ्गार॥ ३॥

चं०— यत्तु "रामस्य परमास्त्रियः" इत्यत्र "स्त्रियः"इति बहुवचनेन श्रीरामस्य बहुभार्य्यात्वमित्युक्तम्। तन्न। "एकत्वं न प्रयुञ्जीत गुरावात्मनि चेश्वरे"इति प्रमाणेन सम्मानार्थकं बहुवचनान्तं"स्त्रियः"इति प्रयोगः।श्रीजनकनन्दिन्यां तस्य तात्पर्य्यमिति। तदितरान्यासां"परमेति"विशेषणविशिष्टानां स्त्रीणां न सम्भवः। यदि काचनान्याः "परमाः" श्रेष्ठाःस्त्रियः भवेयुश्चेत्तदा ताः कथमनिर्दिष्टाः। श्रीमन्मारुतनन्दनोऽपि लङ्कायां श्रीजानक्यादर्शने सर्व्वैः परिवारैः परिकरैस्सह ता अपि कथन्नाचिन्तयत्। पुनश्च "स्त्रियः"इति सामान्यपदमित्युक्तम्,नात्र भार्य्याशब्दः प्रयुक्तः। अतएवान्तःपुरवासिनीषु परिचारिकाषु तल्लक्षणा। मन्थराऽपि दासी।सधर्म्मिणीषु सजातीयासुच तस्या स्पर्धा स्वाभाविकी।

यदेकपत्नीव्रतः श्रीरामः तदा तस्मिन् बहुभार्य्यात्वं कथं स्यात्। अन्यथा "यज्ञे-यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चनी भवदिति" मुनिवाक्यस्य व्यर्थापत्तिः। एकस्मिन्काले श्रीमर्य्यादापुरुषोत्तमावतारे, एकस्मिन्सत्पात्रे श्रीमद्रामभद्रे च

द्विविधधर्म्मस्य कथं सम्भवः ? सूर्य्योदये कथमन्धकारश्चान्धकारे कथं सूर्य्योदयः ॥४॥

ज्यो०—"रामस्य परमास्त्रियः" में जो "स्त्रियः" बहुवचन है उससे श्रीरामजीके अनेक स्त्रियोंका होना सूचित किया है। ऐसा नहीं है। "एकत्वं न प्रयुञ्जीत गुरावात्मनिचेश्वरे।" अर्थात् 'गुरुजन' आत्मा और ईश्वरमें एक वचनका प्रयोग नहीं करना चाहिए,' ऐसा सिद्धान्त है। इस प्रमाणसे "स्त्रियः," यह बहुवचनान्त प्रयोग सम्मानार्थक है। श्रीजनकनन्दिनीमें उसका तात्पर्य्य है। उनसे इतर अन्य कोई स्त्री "परमा" विशेषणसे विशिष्ट नहीं होसकती। यदि अन्य कोई "परमा" (श्रेष्ठा)स्त्री होती तो क्या उसका कहीं वर्णन न होता ? श्रीमारुतनन्दन भी लङ्कामें श्रीजानकीजीके दर्शन न होनेसे सब परिवार-परिकरोंके साथ ऐसे विशिष्ट पात्रोंकी (श्रीरामचन्द्रजीकी उन परमा, श्रेष्ठा स्त्रियोंकी) क्या चिन्ता नहीं करते ?

फिर, "स्त्रियः," यह सामान्य पद है, यहां भार्य्या शब्दका प्रयोग नहीं हुआ है। अतएव अन्तःपुरवासिनी परिचारिकाओंमें उसकी लक्षणा है, अर्थात श्रीरामजीकी दासियोंसे उसका अभिप्राय है, न कि पत्नियोंसे। यह उक्ति मन्थराकी है। वह दासीही थी। इस लिए उसका अपनी सधर्मिणी और सजातीया अर्थात् दूसरे राजा या राजकुमारकी दासियोंके प्रति स्पर्धाका होना स्वाभाविकही है।

जब सब प्रकार श्रीरामजीका एक पत्नीव्रत होना सिद्ध है तब उनमें बहुभार्य्यत्व कैसे होसकता है अर्थात् उनकी और पत्नियां कहांसे होंगी? यदि ऐसा न माना जायगा तो "यज्ञे-यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चनी भवत्" अर्थात यज्ञ-यज्ञमें भार्य्यास्थानमें श्रीजानकीजीकी सोनेकी प्रतिमा स्थापित करते थे,"यह मुनिवाक्य व्यर्थ होजायगा। एक काल श्रीमर्य्यादापुरुषोत्तमावतारमें, एकही श्रेष्ठ पात्र श्रीरामभद्रमें दो प्रकारके धर्मोंका एकही साथ कैसे सम्भव होसकता है? सूर्य्योदयके समय अन्धकार और अन्धकारके समय सूर्य्योदय कैसे होगा? ॥ ४ ॥

चं०— ननु "स्त्रीभिस्तुमन्ये विपुलेक्षणाभिः त्वं रंस्यसे वीतभयः कृतार्थः" इत्युक्त्या श्रीरामस्यानेकभार्य्यत्वं प्रतीयत इति चेन्न। स च विलापः, दुःखोद्गारश्चेति। दुःखातिशये मोहाधिकारत्वात् बुद्धिभ्रंशः। एवञ्चान्तरेन्द्रियाणि सकलानि विकलानि भवन्ति। तद्दशायां वाक् भ्रमभ्रष्टा विह्वलाच निस्सरतीति। न तस्याः प्रामाण्यम्। एवञ्च श्रीजनकनन्दिन्याह्येताः विलापोक्तयोऽपि तादृश्यो बोधव्याः, यथा मारीचप्रसङ्गे श्रीलक्ष्मणकुमारं प्रति श्रीमायासीताकटूक्तयः— "लोभात्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छसिराघ-

वम्। व्यसनं ते प्रियंमन्ये स्नेहोभ्रातरि नास्ति ते।" इत्यादिना। तत्र तस्याः रोषोत्कर्षमेव कारणम्। तथैव वियोगजन्यः दुःखाधिक्यमेवात्र विलापस्य हेतुः, नतु वास्तविकम्। केवलदुःखोत्कर्षव्यञ्जनायां तस्य तात्पर्यमिति।

पुनश्च, सा विलापरूपा दुस्सम्भावना भविष्यत्काले संलग्ना। श्रीजनकनन्दिन्या जीवनान्ते तस्यावकाशसम्भवः। तद्योगोऽनुपलब्धत्वादसिद्धः। तथाच "न सीताया परांभार्य्यां वव्रे स रघुनन्दनः।" "न रामः परदारान्वाचक्षुर्भ्यामपि पश्यतीति महर्षिवचनात् न श्रीरामभद्रस्य एकपत्नीव्रतत्वे काचिदनुपपत्तिः ५॥

ज्यो०—"स्त्रीभिरतुमन्ये" इति, अर्थात 'अनेकविशालाक्षि स्त्रियोंसे निर्भय विहार करके कृतार्थहोगे।' श्रीजनकनन्दिनीकी इस उक्तिसे श्रीरामचन्द्रजीकी अनेक पत्नियोंका होना प्रतीत होता है। ऐसा नहीं है। श्रीजानकीजीका यह विलाप एवम् दुःखोद्गारहै। अत्यन्त दुःखकी दशामें मोहका अधिकार होजानेसे बुद्धि मारी जाती है एवम् अन्तष्करण की और सब इन्द्रियांभी विकल होजाती हैं। उस दशामें वाणी भ्रमसे भटकी और अटपटी निकलती है।

उसका प्रामाण्य नहीं माना जाता । श्रीजानकीजीका यह विलापवचनभी उसी प्रकारका जानना चाहिए। मारीचके प्रसङ्गमें श्रीमायासीताजीने श्रीलक्ष्मणकुमारको जो कटुवचन कहे हैं वे भी इसी प्रकारके हैं, यथा--'मेरे लोभसेही तुम राघवके निकट नहीं जाते। उनका दुःख तुम्हें प्यारा है; तुम्हें कुछभी उनका प्रेम नहीं है" इत्यादि। वहां ऐसा कहनेका कारण केवल उनके (मैथिलीके) रोषकी प्रबलता है। उसी प्रकार वियोगजनित दुःखकी अधिकताही यहां विलापका कारण है, वह विलापमात्र है, न कि यथार्थ। केवल दुःखका बाहुल्य प्रकट करनेहीमें उसका तात्पर्य्य है।

फिर, यह विलापरूपा दुस्सम्भावना (अनुचित कल्पना) भविष्यत्कालमें लागू है। श्रीजानकीजीके जीवनके पश्चात् उसका अवकाश होना सम्भव है। वैसा संयोग न प्राप्त होने से अर्थात् श्रीजनकनन्दिनीके इसलोकमें विद्यमान रहनेमे उनकी उस विरहमयी कल्पनाके चरितार्थ होनेका अवसर ही नहीं आया, वह सर्वथा निरस्त रही। तथा "श्रीसीताके अतिरिक्त दूसरी भार्य्याका श्रीरघुनन्दनने वरण नहीं किया।" "उन्होंने किसी परस्त्रीको आंखे उठाकर देखा तक नहीं।" महर्षिवाल्मीकिके इन प्रबल वचनोंसे श्रीरामभद्रके एकपत्नी-व्रत होनेमें कुछभी सन्देह नहीं रह जाता ॥ ५ ॥

चं०—यदि चेत्, श्रीपद्माभूलीलादेवी

नामपि श्रीरामभद्रस्य पत्नित्वमिति निर्द्दिष्टम्। तन्न। ताः श्रीरामरूपान्तर्गता अप्रत्यक्षाः शक्तयः सन्ति। केवलं सर्गारोहण समये दिव्यास्त्राण्यीव मूर्तिमत्यः दृग्गोचराः। तासां न जनकनन्दिनीव पत्नित्वमिति भावः। ईश्वरोऽनन्तशक्तिमदनेकरूपः। समयभेदेन नैमित्तिकतया स्वरूपानुसारेण तच्छक्तयः प्रादुर्भवन्ति। तस्मात् एका श्रीजनकनन्दन्येव श्रीरामचन्द्रस्य भार्य्या॥

ज्यो०——यदि यह कहो कि श्रीलक्ष्मी-भू-लीला देवी तोभी श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नियां हैं। ऐसा नहीं है। वे श्रीरामभद्रके स्वरूपान्तर्गत रहनेवाली अप्रत्यक्ष शक्तियां हैं। केवल भगवानके स्वर्गारोहणके समय दिव्यास्त्रोंकी तरह मूर्त्तिमती होकर वे दृष्टिगोचर हुई थीं। उनमें श्रीजानकीजीकी तरह पत्नित्व नहीं है। ईश्वर अनन्तशक्तिमन्त और अनेकरूप है। समय-समय पर आवश्यकतानुसार और स्वरूपानुसार उनकी शक्तियोंका आविर्भाव होताहै। अतः मर्य्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीकी श्रीजनकनन्दिनीही एकमात्र भार्य्या हैं।

चं०—"सीतायाश्चरितं महदिति" महर्षिवचनात् श्रीमद्रामायणं स्त्रीप्रधानम्। तन्न। महाकाव्ये नायकस्य प्राधान्यमिति, यथा— "सद्वंशः

क्षत्रियोवाऽपि धीरोदात्तगुणान्वितः"(—साहित्य-दर्पणे)। नायिका सदा नायकाधीना—"न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति"। यस्य चरितं महत् सा सीता श्रीरामेऽन्तर्गता, न तस्य स्वातन्त्र्यमिति। अत-एव श्रीरामस्यैव प्राधान्यम्। सा सदैव तदाश्रिता, यथा श्रुतिः—"रामसान्निध्यवशात् जगदानन्द-दायिनी। उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणीं सर्वदे-हिनाम्॥"(—श्रीरामतापनीयोपनिषद्)श्रीमद्रा-माश्रयेण तत्समस्तचरितं सङ्घटितम्। यथा सेनाया विजयः राज्ञ्येव मन्तव्यः। अङ्गस्य कार्य्यं अङ्गिषु समर्पितम्भवति।

"कुरुरामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम्।
रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमतः॥"

बालकाण्डे।

"आदिकाव्यमिदं राम त्वयि सर्व्वं प्रतिष्ठितम्।
नह्यऽन्योर्हति काव्यानां यशोभाग्राघवादृते॥"

उ० काण्डे।

इत्यादि वचनेन सर्व्वेदमादिकाव्यं श्रीमद्रामायणं श्रीरामेप्रतिष्ठितम्, नह्यन्यस्मिन्। रामायणेति नामैव नायकस्य श्रीरामस्य प्राधान्य-बोधकम्। नान्नान्यप्रमाणापेक्षा। "सीताया-

श्चरितं महदिति" अन्यपात्रापेक्षया निर्दिष्टं, नतु रामापेक्षया।

श्रीमद्रामायणं वीररसप्रधानं करुणप्रधानं वा मतान्तरे, न तत्र कालत्रयेऽपि शृङ्गारस्य प्राधान्यमिति। तत्र स्थलस्थलेषु च वीरस्य करुणस्य वा निष्पत्तिः ॥६॥

ज्यो०—"सीतायाश्चरितंमहत" अर्थात् 'सीताचरित विस्तृत है,' महर्षिके इस वचनसे श्रीमद्रामायण स्त्रीप्रधान है। ऐसा नहीं। महाकाव्यमें नायककी प्रधानता होती है, जैसा "साहित्यदर्पण" में कहा है—"धीरोदात्तके गुणोंसे मण्डित उत्तम वंशका क्षत्रिय नायक हो।" नायिका सदा नायकके अधीन होती हैं, जैसा सिद्धान्त है कि—"स्त्रियों को स्वतन्त्रता नहीं है" ("न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति")। जिनके विस्तृत चरित्र हैं वे श्रीसीताजी श्रीरामजीके अन्तर्गत हैं, वे स्वतन्त्र नहीं हैं। अतएव श्रीरामजीकीही प्रधानता है। वे (श्रीसीताजी)सदैव उनकी आश्रिताहैं, जैसी श्रुति है कि—"रामसान्निध्यवशादिति"—श्रीसीताजी श्रीरामजीके सहयोग के कारण जगत्को आनन्द-देनेवाली और अखिल-देहधारियोंकी उत्पत्ति,स्थिति तथा संहार-करनेवाली हैं"—(श्रीरामतापनीयोपनिषत)। श्रीरामजीके आश्रयसेही उनके सम्पूर्ण चरित्र घटित हैं। जैसे सेनाकी विजय राजाकी मानी जाती है एवम् अङ्गका कार्य्य अङ्गीको समर्पित होता है।

"कुरु रामकथामिति"—'श्रीरामजीकी पावनी कथा तथा उनके समस्त गुप्त—प्रकट चरित्र सुन्दर श्लोकोमें निबद्ध करो'—(बालकाण्ड) तथा "आदिकाव्यमिदं" इति—'यह सम्पूर्ण आदिकाव्य, हे रामजी, आपमेंही प्रतिष्ठित है, दूसरे किसीमें नहीं' (—उत्तरकाण्डे) । इत्यादि वचनोंसे यह सम्पूर्ण आदि-काव्य श्रीमद्रामायण श्रीरामजीहीमें प्रतिष्ठित है, किसी अन्यमें नहीं। 'रामायण' नामही अपने नायक श्रीरामजीकीही प्रधानता बतलाता है। इसमें किसी अन्य प्रमाणकी अपेक्षा नहीं। 'श्रीसीताजीका चरित्र महत है,' यह अन्य पात्रोंकी अपेक्षा कहा है,न कि रामजीकी अपेक्षा।

श्रीमद्रामायण वीररसप्रधान है, मतान्तरमें करुणा-प्रधानभी है। उसमें त्रिकालमेंभी शृङ्गारकी प्रधानता नहीं हो सकती । उसमें ठौर ठौर पर वीर अथवा करुणाकी निष्पत्ति हैं ॥ ६ ॥



पर्य्यवसानम्।

चं०—

वसिष्ठः गौतमोऽत्रिश्च विश्वामित्रोऽथ नारदः।
शुको पराशरश्चैव ब्रह्मपुत्राः सहस्रशः॥१॥
सख्यभावेन मां प्राप्ता अगस्त्याद्या महर्षयः।

—रहस्यरामायणे,श्रीमुखवाक्यम्।

यथैव तरुबीजस्थः महास्कन्धः प्रशाखवान्।
तथैव सख्यबीजस्थः शृङ्गारादिरसोऽखिलः॥२॥
आधाराधेय-सम्बन्धः सख्ये सर्व्वरस्यहि।
तस्माच्छ्रीरामरूपस्य सख्य एव न संशयः॥३॥

शृङ्गाररूपोह्यहमेकएव परात्परः सर्व्वशरण्यतास्पदः। उभौ च बाहू परिकीर्तितौ मे सखासखी चोत्तमवेषधारिणौ॥४॥ दासश्च पादः परिकीर्त्तितो मे शान्तशिरश्चैव वदन्ति वेदाः वात्सल्य प्राणोहृदयोमनश्च तथापि सख्यः परतःपरात्मा॥५॥ सख्यात्परो नैव रसः परात्परो सर्वेषु वेदेषु च निश्चितं मुने। येनैव चैक्यं मम प्राप्य जीवः सुमोदते ब्रह्मपदे मनोहरे॥६॥

—लोमशसंहितायां, श्रीमुखवाक्यम्।

पर्य्यवसान।

(दोहा)

ज्यो०—नारद-विश्वामित्र अरु, गौतम-अत्रि-वसिष्ठ।
ब्रह्मसुपुत्र सहस्रहूँ शुक-मुनि ब्रह्मविनिष्ठ ॥१॥
अगस्त्य-पराशर आदिहूँ भए महर्षि अनेक।
सख्य-भावते ते मिले हमैं समेत विवेक ॥२॥
——रहस्यरामायणमें, श्रीमुखवचन

विशाल स्कन्ध प्रशाखवत ज्यौं तरु बीज समाहिं।
तैसे शृङ्गारादि-रस रहत सख्य-रस-माहिं ॥३॥
अहै सख्य आधार रस उज्ज्वलादि आधेय।
तातैं रामस्वरूपवर अहै सख्यरस ज्ञेय ॥४॥

(रूप-घनाक्षरी)

दमपतिस्वभाव शृङ्गाररस रूप मेरो, [1]सबही शरण्य सुख-

---

१ दाम्पत्यभावसे शृङ्गार भगवान्‌का स्वरूप है। § श्रीजनकनन्दिनीसे अपना अभेद मानकर यहां भगवान्‌ने अपनेको शृङ्गाररूप कहा है।‡ जब वे अद्वैतसच्चिदानन्दैकरसात्मा हैं तब वे सख्यरूप हैं। क्योंकि भगवान् ने "तथापि सख्यः परतः परात्मा" कहा है। अर्थात 'सख्य' हमारा परात्पर परमात्मस्वरूप है। यदि शृङ्गार भगवान् का शरीर है तो सख्य आत्मा है। साधारणतः यह समझना चाहिये कि जब भगवान् अकेले अथवा सखाओंके संग हैं तब सख्यस्वरूप और जब श्रीजनकनन्दिनीजी के साथ हैं तब वे शृङ्गाररूप हैं—जैसे

§ नारि विलोकहिं हरषि हिय निज-निज-रुचि-अनुरूप।
जनु सोहत शृङ्गारधर मूरति परम अनूप ॥

‡ गिरा-अर्थ जलवीचिसम कहियत भिन्न, न भिन्न।
बन्दौं सीतारामपद जिनहिं परम प्रिय खिन्न ॥

दायक शोभानिधान। दक्षिण सखान वाम भुज हैं सखीन मेरी, सुन्दर सुवेश शुभशील दिव्य-गुण-ज्ञान। दास्यरस पाद शान्त शिर है वदत वेद, वातसल्य मेरो अहै, मानस-हृदय-प्रान। हौं तौ आपु सख्यरस अगम-अतर्क्य अति, सो परम आनन्दको निधान जान विद्वान ॥ १ ॥

(रोला)—सख्य परे रस नाहिं मुने, श्रुति-निश्चित मत है।
जिहितें हौंसन एक होयकै जीव रमत है॥
गुणातीत सो पाय ब्रह्मपद मोद करत है।
भोगत मोसम दिव्य भोग पुनि भव न परत है॥

—लोमशसंहितामें, श्रीमुखवाक्य।

—:÷:—

चन्द्रामृतबिन्दुः।

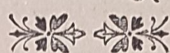
चं०—

ब्रह्मानन्दे न वैषम्यं सच्चिदानन्दलक्षणे।
सख्यब्रह्मरसोह्येव नानारूपः प्रकाशते ॥१॥
केवलं पात्रभेदेन तारतम्यन्तु भासितम्।
रुचीनामतिवैचित्र्यात् भावभेदोऽपिजायते ॥२॥
सत्यप्रेमाधिकारेण दुर्लभं सुलभं सदा।
असम्भाव्योऽपि सम्भाव्यस्तस्यामोघप्रभावतः ३॥

"धर्मराजही धर्मभेदसे दण्डकालमें यमराज कहलातेहैं और न्यायकाल में धर्मराज, अथवा जैसे श्रीकृष्ण नन्दनन्दन (गोपाल) और वासुदेव भी कहलाते हैं, तैसेही श्रीरामजी शृङ्गारस्वरूप भी हैं और सख्य तो, परात्पर ब्रह्मात्मरूपसे, वे स्वयम्ही हैं।

एवमेवाऽपि रागेण भोगरूपेण सर्व्वतः ।
सुलभं दुर्ल्लभं त्वेवं भवबन्धो दृढोधिकम् ॥४॥
रसः किल रहस्यो वै हृद्देशमवलम्बते ।
अप्रकाश्यो यतो लोके रक्षणीयः प्रयत्नतः ॥५॥
दयितस्य सुखेनैव सुखं सर्व्वं मतं ध्रुवम् ।
तस्योज्ज्वल यशः क्वापि कर्त्तव्यं न च लाञ्छितम् ६
लोकवेदानुसारेण सम्प्रदायानुमोदितः ।
पालनीयस्सदाचारः सुमर्य्यादापुरस्सरम् ॥७॥
अस्य सख्यस्य शास्त्रस्य राकेशस्य प्रयोजनम् ।
रसरूपं प्रकाशं च तत्त्वतः सुमनोहरम् ॥८॥
भ्रमन्तं विरमन्तं ये रागारण्ये तमोमये ।
अन्वेषन्ते वृथा दिव्यं रसामृतसरोवरम् ॥९॥
स्वप्रकाशप्रदानेन सत्पथस्य प्रदर्शकः ।
सख्यसिन्धूदितः पूर्णचन्द्रोऽयं सुप्रकाशितः १०॥
ईश्वरे परिलग्नेन दोषो वै सद्गुणायते ।
अपेयं सिन्धुपाथोऽपि मेघस्थं स्वादुतांगतम् ॥११
केऽपि केनापि भावेन तद्भक्तेरधिकारिणः ।
यदिचेदीश्वरे श्रद्धा शुद्धा हृदभिजायते ॥१२॥
जन्मभूमिर्मनोजस्य मनो यत्र स तिष्ठति ।
प्रतिरूपोयमस्यैव शृङ्गारः समुदाहृतः ॥१३॥

सावधानतया स्थेयं मनीषिभिरहो सदा।
दिव्यप्रेष्ठपदाम्भोजरसमाधुर्य्य-लोलुपैः ॥१४॥
परोक्ष इन्द्रियागम्ये ईश्वरे दुर्ल्लभा रतिः।
यदा प्रेयान् स देवेशः सर्वे भोगास्तदाप्रियाः॥१५
नेन्द्रियोऽहं न देहोऽहं भोगस्य किम्प्रयोजनम्।
तदीश्वरस्य शेषोऽहं चिद्रूपस्समलक्षणः ॥१६॥



इति श्रीमच्चक्रवर्त्तिचक्रचूडामणि श्रीमन्महाराजाधिराजेन्द्रकुमार श्रीलाल श्रीमदवधशरणनिर्म्मिते श्रीसख्यसिन्धुचन्द्रोदये पश्चिमालोकः।



चन्द्रामृतबिन्दु।

(दोहा।)

ज्यो०—सच्चिद ब्रह्मानन्दमैं नहीं अहै वैषम्य।
प्रगट्यो नाना रूपह्वै सख्य-ब्रह्म-रस रम्य ॥१॥
केवल पात्र-विभेदसे तारतम्य दिखरात।
रुचिके अति वैचित्र्य तैं भाव अनेक उगात ॥२॥
सत्यप्रेमवश दुर्ल्लभौ सुलभ होयहू जात।
होत सुसम्भवहू अहै जौन असम्भव बात ॥३॥
असत प्रेमहू तैसही विषयभोगको रूप।
सुलभौ दुर्ल्लभ करत है डारत कर्म्म-कुकूप ॥४॥

रस रहस्य है, हीयको विषय सुरम्य सुहाय।
प्रकट न कीजै जगतमें धरियै तहां जुगाय ॥५॥
अहै प्रेय-सुखतैंहि सुख तातैं स्वारथ-लाग।
ताके उज्ज्वल सुयशमें नाहिं लगाइय दाग ॥६॥
लोक-वेद-अनुकूल औ सम्प्रदाय-अनुसार।
सदाचार नित पालिए मर्य्यादाको धार ॥७॥
यहि सुसख्य-शास्त्रेन्दुके उदयकेर उद्देश।
करिबो तात्त्विक रीतिसे प्रगट मञ्जु रसवेश ॥८॥
भटकत-अटकत विषयवन मोहतमोमय-माहिं।
खोजत दिव्य रसामृत-सरवर जित-तित जाहिं ॥९॥
तिनको देइ प्रकाश निज सुपथ-दिखावन-काज।
सख्य-सिन्धुतैं उदित यह पूर्णचन्द द्विजराज ॥१०॥
लगन लगनतैं ईशमें दोषौ गुणसम होय।
मधुर होत है मेघमें खार सिन्धुको तोय ॥११॥
सबको सबही भावतैं भक्तिकेर अधिकार।
जौ हियमें हरिप्रति विमल हो श्रद्धा-सञ्चार ॥१२
मन मनसिजको जन्मथल, तहां रहत सो छाय।
ताहीको प्रतिरूप यह रस श्रृङ्गार सुहाय ॥१३॥
सावधान रहिबो उचित मतिमन्तन यहि हेतु।
दिव्य-प्रेय-पदकञ्ज-मधु-लोलुप मधुकर जेतु ॥१४॥
अगम इन्द्रियनतैं अदृश हरिमें दुर्लभ नेह।
जौ प्रिय लागैं देव सो, सबै भोग हो खेह ॥१५॥

नहिं इन्द्रिय, नहि देह हौं, काह भोगतैं काज।
शेष अहौं वहि ईशको चिद् समलक्षण भ्राज ॥१६

अथ सख्योपनिषद्।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदंचते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥१॥ ॐ शान्तिः ३। ॐ क्वचित्समये सनकादयश्शेषं प्रति जग्मुः। कथंनु भगवन् पुरुषं वेदज्ञा भक्त्या पश्यन्ति प्राप्नुवन्ति तेन सह क्रीडन्ति। सहोवाच। सख्यरसेनैव २। श्रुत्वा पुनरूचुः। भगवन् क स रसः प्राकृतोऽप्राकृतो वा। सहोवाच। अप्राकृतः प्रकृतिपरश्च सख्यस्यैव बहूनि पर्य्यायनामानि सन्ति ३। विश्वासः श्रद्धा श्रद्धाविश्वासः प्रकृतिः। सत्यज्ञानमनन्तं ब्रह्म तद्ब्रह्म सख्यरसात्मकः। श्रीरामएवरसोवैसः।४।यस्यदासरसोवैपादः५।यस्य शान्तरसो वै शिरः।६। वात्सल्यःप्राणाः।७। शृङ्गारो बाहू।८। सख्यात्मा।९।सख्यरसाज्जायन्ते पर-व्यूहविभवान्तर्य्याम्यर्चावताराः। सख्यरसान्महाविष्णुर्जायते। सख्यरसान्महाब्रह्मा जायते। सख्यरसान्महारुद्रो जायते। सख्यरसात्परमात्मा जायते।

सख्यरसान्महालक्ष्मीर्जायते। सख्यरसान्महामाया जायते। सख्यरसादाद्याशक्तिर्जायते। सख्यरसात्सखा जायते। सख्यरसाद्वासुदेवो जायते। सख्यरसात्क्षीरशायी जायते। सख्यरसात्सर्वेश्वराः जायन्ते। सख्यरसात्सर्वेऽवताराः जायन्ते। सख्यरसान्नृसिंहो जायते। सख्यरसाद्वराहो जायते। सख्यरसान्मत्स्यकच्छपौ जायेते। सख्यरसात्कल्किबौद्धौ जायेते। सख्यरसाद्वामनो जायते। सख्यरसात्परशुरामो जायते। सख्यरसाच्छ्रीकृष्णो जायते। सख्यरसाद्बलरामो जायते। सख्यरसाद्विष्णुर्जायते। सख्यरसान्महादेवो जायते। सख्यरसाद्ब्रह्मा जायते। सख्यरसान्महेन्द्रो जायते। सख्यरसादिन्द्रो जायते। सख्यरसात्सर्वेदेवाः जायन्ते। सख्यरसात्सर्वाः शक्तयो जायन्ते। सख्यरसाच्छेषो जायते। सख्यरसाद्गणेशो जायते। सख्यरसाद्वरुणो जायते। सख्यरसात्सोमो जायते। सख्यरसादग्निर्जायते। सख्यरसात्सूर्यो जायते। सख्यरसाद्यमोजायते। सख्यरसात्कल्पवृक्षो जायते। सख्यरसात्कामो जायते। सख्यरसात्कामधेनुर्जायते।

सख्यरसाद्धनदोजायते । सख्यरसात्सर्वे मरुताः जायन्ते । सख्यरसात्सर्वे गन्धर्वाः जायन्ते। सख्यरसात्सर्वे विद्याधराः ज़ायन्ते। सख्यरसात्सर्वे वेदाः जायन्ते । सख्यरसात्सर्वोपनिषदो जायन्ते। सख्यरसात्सर्वे मन्त्राः जायन्ते। सख्यरसात्सर्वे सिद्धाः जायन्ते। सख्यरसात्पञ्च महाभूतानि जायन्ते। सख्यरसात्सर्वे जड्चेतनाःजायन्ते। अतो ब्रह्मवित्सर्वं स्त्रीपुन्नपुंसकात्मकं विश्वं सख्यात्मकं पश्यति। यस्मादितरन्नकिञ्चिदिति। नित्यभेदं। तित्योऽभेदो। नित्योऽभेदो। नित्योऽभेदो विवेचनीयोब्रह्मविद्भिः । हरि ॐ पूर्णमद इति शान्तिः। इत्यथर्वणवेदीयपिप्पलीय शाखायां सख्योपनिषद् समाप्ता।

सख्य श्रुतियोंका आशय यह है कि सम्पूर्ण सृष्टि, उसके उपकरण और शक्ति-सहित उसके अधिष्ठातृदेव सख्यरससेही उत्पन्न होते हैं। तो, ऐसे महत्त्वमय सख्यरस का क्या तत्त्व है, यह विचारणीय है । वह मैत्रीरूप है। विना प्रकृति और पुरुषकी मैत्री (संयोग) के सृष्टि हो नहीं सकती। जब पुरुषोत्तम भगवान् अपनी योगमायाका अङ्गीकार करते हैं (उससे उनकी मैत्री सङ्घटित होती है) तब

अनायास सृष्टि-परमाणुओंमें भी सख्यरसका सञ्चार हो उठता है और उसके प्रभावसे आकर्षण होने लगता है और फलतः देखते-देखते त्रिगुणात्मक एवम् पञ्चभूतात्मक इस विराट् जगत्का आविर्भाव होजाता है। प्रकृति और पुरुषके ऐक्यका तत्त्वही सख्यरस है अर्थात् जिस सनातन सिद्ध अवस्थामें वे (प्रकृति और पुरुष) दो नहीं रहते वही सख्यरसका परात्पर स्वरूप है । उसी अनादि-अलौकिक सख्यरसके, जो सृष्टिके पूर्व केवल पुरुषोत्तम एकमेवाद्वितीय रसब्रह्मके रूपमें स्थित था, दो भेद हुए——सख्य और शृङ्गार। वही पर-सख्यरस पुरुष-पुरुषमें प्रेयान्रस कहलाता है, जिसका उल्लेख रुद्रटाचार्य्यने अपने काव्यालङ्कारमें किया है। उसी प्रेयान्रसको सख्यरस कहते हैं। उसीके श्रद्धा, विश्वास आदि पर्य्याय-नाम हैं। स्त्री-पुरुषमें, रूपान्तरित होकर अर्थात् परिणामको प्राप्त होकर वही रस शृङ्गार कहलाता है, जैसा लोमशसंहितामें कहा है——"सख्यशृङ्गारयोरैक्यं तत्त्वतो विद्धि वै मुने।" अर्थात् तत्त्वतः सख्य और शृङ्गार एकही हैं ।

ब्रह्मकी जिस अवस्थाको "रसो वै सः" श्रुति कहती है वही सख्यरस है। अपितु शृङ्गाररसके उद्दीपन और आलम्बनका एकत्व जिसमें रहता है, विभावकी उस पूर्व अवस्थाकोही सख्यरस-नामसे वेद निर्देश करते हैं। स्पष्टतः यह कि जिस अवस्थामें रसको केवल रस कहते हैं उस (रस)की

यही शुद्ध अवस्था सख्यरस है। वही रस अन्तः अर्थात् मनोमयी एवम् वाङ्मयी सृष्टिमें और बाह्य अर्थात् चराचर जगत्में अनेक रूपोंमें परिणत हुआ। अतएव ब्रह्मविद् "सर्वं स्त्री-पुन्नपुंसकात्मकं विश्वं सख्यात्मकं पश्यति।" अर्थात् सम्पूर्ण जगत्को सख्यरूप देखते हैं। "तदितरन्न किञ्चिदिति।" उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। "नित्यभेदं," "नित्योऽभेदो," नित्योऽभेदो," "नित्योऽभेदो विवेचनीयो ब्रह्मविद्भिः।" वही सख्यरस ब्रह्म भेदरूपमें भी है, और वही नित्य अभेदरूपमें भी। उसकी यह अलौकिकता है कि भेदाभेदकी दोनों अवस्थाएँ एक साथही उसमें सिद्ध हैं। यही तत्त्व, यही रस-रहस्य ब्रह्मविद् पुरुषोंके विवेचनका विषय है।

जब सृष्टिमें सख्यरस अन्तर्हित होगा तब परमाणुओं में विकर्षण उत्पन्न हो जायगा और जगत् रसब्रह्ममें अथवा सख्यरसमें लय होरहेगा। यही सख्य श्रुतियोंका तात्पर्य्य है।

उसी सख्यरसके आश्रयसे ब्रह्मविद् एवम् ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् सख्यरसके ज्ञानात्मक और रसात्मक उभय रूपोंको अभेद भावसे जाननेवाले और उस तत्त्वको प्राप्त हो अभेद हुए महात्मा उस पुरुषोत्तमके साथ सखा होकर खेलते हैं। उनकी दृष्टिमें इस सम्पूर्ण विश्वके चराचर प्राणिमात्र उनके सखा और उनसे अभिन्न हैं और वे सबके सखा हैं, इस प्रकार वे विश्वामित्रपदको प्राप्त हैं।

श्रीसख्यसिन्धु-चन्द्रोदयः ।

श्रीसीतारामार्पणमस्तु

जय सीतापति करुणाकन्द ।
जय-जय राम सच्चिदानन्द ॥